ગ્રંથ

– युक्रांद –

(जून १९७१)

प्रियवर

युक्रांद के इस अंक के साथ दो वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। इस बीच सभी मित्रों के सहयोग और प्रेम ने पूज्य भगवान श्री की अनंत–आयामी (Multi–Dimensional) वाणी को सभी प्रेमी साधकों के अंतस् हृदय तक पहुंचाया है–उससे जो आनंद चारों ओर बिखरा है–उससे मानवी चेतना के मुक्ति के द्वार खुले हैं।

इस आनंद और प्रेम के उत्सव में अधिक से अधिक आप हाथ बंटायेंगे, इस महती कामना के साथ हम युक्रांद के पिछले वर्ष के प्रकाशन पर एक सारभूत दृष्टि प्रस्तुत कर रहे हैं।

•

पिछले वर्ष के प्रकाशन पर एक दृष्टि :

कुल प्राप्ति रु. १६,०००/—(युक्रांद के १,४०० वार्षिक एवं अर्द्धवार्षिक सदस्यों से)
कुल व्यय रु. १८,०००/– (१४ अंकों का व्यय मय ब्लाक १५,४००/—
पोस्टेज १,४००/—, डिस्पेच-प्रवास एवं व्यवस्था १,२००/–)
कुल हानि रु. २,०००/–

हानि की इस राशि को 'युक्रांद' की स्थायी निधि से पूरा किया गया। यह राशि २,०००) रु. थी, जो युक्रांद के प्रेमी साधकों से इस वर्ष प्राप्त हुई थी।

इस प्रकार चालू वर्ष में युक्रांद केवल नये सदस्यों के वार्षिक सदस्यता शुल्क से चल रहा है, जो इस वर्ष के प्रकाशन के आधार पर अपर्याप्त है।

•

निवेदन :

युक्रांद आपके स्वेच्छानुसार आर्थिक सहयोग का आकांक्षी है–स्थायी निधि हेतु। इस स्थायी निधि हेतु एक विशेष सहायता पत्र संलग्न है।

स्वामी धर्म सरस्वती
(आर० आर० मिश्रा)
व्यवस्थापक

आलोक कुमार पाण्डे
सह-संपादक

अरविन्द कुमार
संपादक

रजनीश-भगवान क्यों और कैसे ?

स्वामी चैतन्यबोधिसत्व (आर. एन. ऐरन) अहमदाबाद

अभी उस दिन बड़ी मुश्किल हो गई जब कुछ श्रद्धालु लोगों ने माइक पर आवाज लगादी 'बोलो भगवान रजनीश की जय'। एक तूफान सा आ गया। जैसे लोगों का इन्द्रासन डोल गया। एक विरोध उठ खड़ा हुआ। जो अपने को ज्ञानी समझते हैं एकदम आपे से बाहर हो गये और कहने लगे रजनीश जी को चाहिए कि इसको मना करें। उनके सामने ही उनके सन्यासी उन्हें भगवान कहते हैं पब्लिक में आवाज लगाते हैं भगवान रजनीश की जय बोलते हैं और ये उन्हें कुछ भी नहीं कहते। इससे इनकी ख्याति को बड़ा धक्का लगेगा। इससे लोग इनके विपरीत हो जायेंगे। ऐसी बातों को रजनीश जी को प्रश्रय नहीं देना चाहिए।

दो चार दिन बाद सन्यासियों के साथ प्रेस कान्फॉरेन्स में भी रिपोर्टरों ने यही सवाल बड़े ऊँचे स्वर से पूछा। बड़े परेशान दिखलाई पड़ते थे इस प्रश्न पर जैसे कि बड़ी भारी गलती बात हो गई। उनका कहना था कि इससे रजनीश की प्रेस्टीज पर आंच आयेगी। इतने ज्ञानी आदमी और उनको प्रेस्टीज पर आंच आये ये वे नहीं चाहते।

पहली बात जो मैं कहना चाहूंगा वह यह कि रजनीश जी को किसी प्रेस्टीज की पड़ी नहीं है। वे किसी झूठी सच्ची इज्जत या ख्याति की परवाह नहीं करते। यदि किसी को ऐसा ख्याल हो कि इससे रजनीश की कीर्ति कम हो जायेगी तो वह इसकी चिन्ता छोड़ दे। रजनीश जी इन सब बातों से बहुत पहले ही बहुत ऊपर उठ गये हैं। उन्हें कोई मान या अपमान की बात नहीं छूती। वे यश, अपयश, मान सम्मान, सब ऊँच नीच से परे हैं। ये सब बातें उनके रास्ते में नहीं आती, उन्हें तनिक भी विचलित नहीं करती। वे जरा भी ऐसी बातों से आकर्षित नहीं होते। इसलिए पहली बात तो यह समझ लेनी है कि रजनीश जी को इन सब बातों से कुछ मतलब नहीं। **कोई उन्हें भगवान कहे तो वे आल्हाद से नहीं भरते और उन्हें कोई दुष्ट कहे तो वे विषाद से नहीं भरते। कोई जय जयकार के नारे लगाये तो हँस जरूर देते हैं लोगों का मान रखने को और कहते भी हैं 'बस, भाई बस।' पर कहीं भीतर गहरे में सब कुछ शांत व नीरव है, वहां अब कुछ नहीं होता, सब ठहर गया है, सम हो गया है। कितने ही फूल बरसाओ वहां कुछ नहीं होता। कितने ही पत्थर मारो वहां कुछ आन्दोलित नहीं होता, कुछ नहीं टूटता, एक लहर भी नहीं उठती। लगता है उस विराट शून्य में जो भी पहुंचता है शून्य हो जाता है कहीं कोई रेखा नहीं पड़ती। पूर्ण में से** कुछ भी निकालो पीछे पूर्ण ही शेष बचता है; और पूर्ण में कुछ भी जोड़ दो तो भी पूर्ण ही रहता है कुछ भी अधिक नहीं होता। लगता है ऐसा ही वहां भी है रजनीश के अंतस् में।

इसलिए मैं उनके हितैषी मित्रों से विनयपूर्वक निवेदन करता हूं कि वे बिल्कुल चिंतित न हों कि रजनीश जी की कीर्ति को आंच आयेगी, कि उनका अपयश होगा। वे कृपया इन सब बातों की चिंता छोड़ें।

दूसरी बात जो इस संबंध में विचारणीय है वह यह है कि लोग उन्हें आचार्य रजनीश के स्थान पर भगवान रजनीश क्यों कहने लगे ? वैसे बात बहुत सरल व सीधी है यदि ठीक से समझने का प्रयत्न किया जाये। जैसा जिसका मनोभाव। हम एक पत्थर को भी देवता

समझ लेते हैं तो उसे भी भगवान की संज्ञा दे देते हैं और उसके सामने सिर नवा देते हैं। हालांकि वह अन्ध विश्वास से ही भरा पूरा होता है। उसमें कोई भी समझ की बात नहीं होती। वह केवल कुछ मांग करता सिर झुका होता है—किसी अनुग्रह, किसी कृतज्ञता के भाव से भरा नहीं। वह केवल परम्परागत, रूढ़ी ग्रस्त, व संस्कार केंद्रित होता है। उसमें स्वयं के विवेक या विचार का प्रश्न ही नहीं होता। जैसा हमारे माता-पिता ने हमें सिखला दिया, जैसी शिक्षा हमें मिली वैसा ही हमारा विचार व आस्था हो जाती है। हमें किसी ने कह भर दिया कि वे भगवान थे, अवतारी थे। हमने कहा-ठीक है, हम पूजा करेंगे और आँख मीचकर पूजा शुरू हो गई। ऐसा ही हम सब ज्ञान को उपलब्ध व्यक्तियों के लिये करते हैं। हमारी अपनी कोई समझ नहीं है, कोई खोज नहीं है। हमारी अपनी इसके पीछे कोई जानकारी नहीं है। और इस तरह हमने हजार-हजार देवताओं को आंख बन्द कर नमन किया, जय जय कार के नारे लगाये और पागल ही हो गये इतने कि तलवारें खींच ली यदि किसी ने हमारे भगवान को गलत बता दिया या कुछ कह दिया। और इस तरह, हमें पता है धर्म के नाम पर जितना रक्तपात हुआ, किसी और कारण से नहीं हुआ।

कहने का तात्पर्य यह है कि अब तक हमने बिना जाने ही मान लिया कि फलां भगवान थे, परमात्मा थे, क्योंकि ऐसा शास्त्रों में लिखा है, गुरुओं ने कहा है, पण्डितों ने हजार-हजार बार दोहराया है, माता-पिता ने घुट्टी के साथ पिलाया है। पर हमारा कुछ सोचना समझना नहीं है। हमारी सब आस्थायें, धारणायें उधार हैं किसी से आई हैं किसी ने कहा है, बतलाया है और हमने मान लिया है। उन सबमें अब तक किसी ने हमको नहीं बतलाया कि रजनीश भगवान हैं, किसी पण्डित, किसी शास्त्री ने ऐसा नहीं कहा कि ऐसा कोई साधारण दिखने वाला व्यक्ति कभी परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है। इसलिए, ऐसे में अगर लोग एतराज करें तो कोई गलत बात नहीं करते। वे जहां खड़े हैं, वे जहां से देख रहे हैं, जहां से वे बोल रहे हैं, बिल्कुल ठीक ही कह रहे हैं।

परन्तु दुख इस बात का है कि वे इस छोटे से तथ्य को भूल हा जाते हैं जो लोग जय-जयकार कर रहे हैं वे उनके साथ नहीं खड़े हैं—वे उनसे दूर खड़े हैं—वे रजनीश को थोड़े नजदीक से देख पा रहे हैं। उन्होंने छलांग लगाई है और **कदाचित उन्हें कोई झलक लगी है रजनीश की, उसके शरीर के पार की, उसके देवत्व की। उसके परमात्मा होने की, शायद कोई आहट उन्हें लगी है। इसलिये वे अपनी भावना, अपना प्रेम, अपनी श्रद्धा, अपना आनन्द जो भीतर उमड़ पड़ता है रजनीश को देखते ही रोक नहीं पाते और जय जयकार कर उठते हैं। यह कुछ और नहीं बस प्यार है सागर का जो लहरें बन ऊँचा उठ जाता है और उसमें एक ज्वार सा आ जाता है पूर्ण चन्द्रमा को देख, रजनीश को नजदीक पा।** वे किसी अन्धविश्वास से ऐसा नहीं कर रहे। वह तो मात्र अभिव्यक्ति है उनके आनन्द की जो उनके हृदय को आलोड़ित कर रही है और वे **नाच उठते हैं कहते हुए कि-रजनीश आये आनंद लाये।** यह लोगों को अजीब लगता है, **पागल होना लगता है क्योंकि वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई इतना आनन्दित कभी हो सकता है। उस आनन्द को व्यक्त करने का कोई रास्ता भी नहीं है।** अगर कोई मोटर, बंगला या पद मिलता तो साफ दिखलाई पड़ सकता था। पर भीतर के आनन्द को कैसे बताया जाये? कैसे कृतज्ञता प्रकट की जाये उस सबके लिए जो रजनीश से मिला है?

और यदि ऐसे में उन्हें रजनीश में भगवान दृष्टिगोचर हो रहा है तो इसके लिए रजनीश क्या करें। यदि किसी को ठीक इसके उल्टे भी रजनीश में कुछ नजर आये और वह वैसा बोले तो भी **रजनीश कुछ नहीं कहने वाले।** ऐसा कितनी बार हुआ है कि लोगों ने उनकी सभा में विरोधी नारे लगाये, पत्थर फेंके, अपमान जनक शब्दों का उच्चारण किया पर वे बिल्कुल मौन, शांत, व अडिग ही रहे। कहीं कोई रेखा नहीं खिची। उन्हें कभी क्रोधित होते, विचलित होते या

किसी भी भांति प्रतिक्रिया करते अपने विरोधियों को भी किसी ने नहीं देखा। बल्कि उन्होंने तो स्वयं कितनी ही बार कहा है कि जब लोग उन्हें गालियां दें, पत्थर बरसायें अपमान करें, तो ही उन्हें लगता है कि बात ठीक हुई यदि कोई प्रशंसा करे, सम्मान करे, अभिनंदित करे तो वे सोचते हैं जरूर कोई बात गलत हो गई वरना लोग ऐसा नहीं कर सकते। क्योंकि हम इतने गलत हो गये हैं कि किसी भी ठीक बात को ठीक समझ ही नहीं सकते। वह क्षमता ही खो गई है।

इसलिए यदि कोई रजनीश जी का सम्मान करे तो भी कोई बात नहीं और कोई अपमान करे तो भी कोई बात नहीं। कुछ भी करके मनुष्य स्वयं को ही प्रकट करता है। अभी बड़ौदा में कुछ समय पहले सभा के अन्त में किसी मित्र ने क्रोध में भर कर उन पर चप्पल फेंकी। लोग उस आदमी की तरफ दौड़े **तो रजनीश जी फौरन चिल्लाये—'उन्हें कुछ न कहें, उन्हें कुछ न कहें।'** वे तो इससे भी आगे कहते हैं। जब लोगों ने उनसे पूछा कि लोग आपके पाँव छूते हैं पांव पर सिर रखते है, तो आप इनको मना क्यों नहीं करते ? तो उन्होंने जवाब दिया—'यह लोगों को मौज है कि वे मेरे पाँव में सिर रखते हैं। इसके विपरीत यदि कोई मेरे सिर में पाँव रखे तो वह भी उसकी मौज होगा।" **हम साधारण मनुष्यों के लिए बात समझ के बाहर है। बात बहुत गहरी है। एक बिन्दु तक मनुष्य को इन सब बातों की परवाह रहती है—पर जब वह पार उतर जाता है तो सब बात खतम हो जाती है।** रजनीश जी ने कहा है—मेरी चिन्ता भूल कर भी मत करना। जबसे स्वयं को ईश्वर के हाथों में सौंपा है सब चिन्ताओं से मुक्त हो गया हूं। ईसा को लोग जब अपमानित करते तो भी वे अपनी बात कहते और चुपचाप चल देते। बुद्ध पर लोग गालियां बरसाते पर वे हंस देते और कहते—लौटने पर और दे लेना यदि बाकी रह गई हों तो। मोहम्मद के साथ क्या हुआ छिपा नहीं। सुकरात को सत्य कहने पर जहर दिया गया यह भी हमें पता है। पर ऐसे लोगों ने कब किसकी परवाह की है। ये तो अपना काम करने आये थे। जो सत्य इन्हें मिला था, जो आनन्द इन्होंने जाना था उसका इशारा दुनिया को करने आये थे। जिन्होंने समझा-समझा। जिन्होंने नहीं समझा, नहीं समझा। उनके वक्त में हमेशा ही लोगों ने उनकी निन्दा की, अपमान किया और जब वे चले गये तो उनकी मूर्तियां बनाई, मन्दिर बनाये, मठ बनाये और उनके चारों तरफ **एक सम्प्रदाय खड़ा हो गया जो टूट गया सबसे और जुड़ न पाया किसी से।**

यही डर लोगों को यहां भी लगता है। डर सच भी हो सकता है। जैसे लोग हम हैं उसको देखते हुये तो सच होने की ही संभावना अधिक है। इसमें रजनीश जी क्या करें ? यदि हम फिर वही करें जैसा पहले वाले लोगों ने किया तो इसमें रजनीश जी क्या करें ? यह तो हमारा ही कसूर होगा। हम सब प्रतिक्रिया में जीते हैं और जहां प्रतिक्रिया है वहां यही होगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि प्रतिक्रिया पक्ष में हो या विपक्ष में।

जो लोग आवाज लगा रहे हैं वे भी थोड़े तो प्रतिक्रिया में हैं, और जो लोग आतंकित हो रहे हैं वेभी प्रतिक्रिया ही कर रहे हैं। एक कह रहे हैं हम ऐसा मानते हैं, दूसरे कह रहे हैं हम ऐसा नहीं मानते। मानते दोनों ही हैं एक विधायक ढंग से तो दूसरे नकारात्मक ढंग से। दोनों में बहुत फर्क नहीं है। जो जानेगा, दोनों ही बातें नहीं कह सकेगा। **इतना ही बस कह सकेगा कि यदि पृथ्वी पर कभी कोई परमात्मा को उपलब्ध हुआ है जैसे कि राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जीसस, या मोहम्मद तो रजनीश कहीं उनसे पीछे नहीं हैं-वे भी उनके साथ खड़े हैं।** उन्होंने भी उस पूर्ण सत्य को जाना है जो कभी भी किसी महावीर ने, बुद्ध ने, कृष्ण ने, जीसस ने जाना था। जो जानेगा और समझेगा इतना ही कह पायेगा कि यदि कोई बुद्ध निर्वाण को, शून्य को उपलब्ध हुआ है तो रजनीश भी अवश्य ही हो चुके हैं। वे उस ब्रह्म की सत्ता से ईश्वर के अस्तित्व से एक हो चुके हैं। ऐसा स्पष्ट आभास यदाकदा किन्हीं

आत्यंतिक क्षणों में लोगों को हुआ है और यही कारण है वे अपनी मनोभावनाओं को छिपा नहीं पाते और उनके प्रति प्रेम से प्रति संवेदन से भरे, **एक पवित्र निर्दोषिता से उत्प्रेरित हो कभी आवाज लगा देते हैं कि भगवान रजनीश की जय।** वह सिर्फ उनका आनन्द है जो भीतर से बाहर बह रहा है। वह मात्र अनुग्रह का भाव है उस आनन्द के लिए जो रजनीश के द्वारा उन्हें स्पर्श कर रहा है। इसमें कोई अन्धविश्वास नहीं, कोई संप्रदाय या गुट का गुरूडम का प्रश्न नहीं। यह तो मात्र **भोले साधकों की कृतज्ञता का भाव है।** ग्रेटीट्यूड है जो वे रजनीश के प्रति प्रकट कर रहे हैं और अनजाने ही आह्वान दे रहे हैं सबको कि आओ इस परमात्मा के नजदीक, और इसे ठीक से जानो, पहचानो। यह हड्डीचाम का बना खाली शरीर ही नहीं है, यह मात्र ज्ञान का भण्डार ही नहीं है, यह मात्र ज्वलन्त प्रश्नों पर प्रवचन करने वाला एक श्रेष्ठ वक्ता ही नहीं है, यह केवल शास्त्रों को जानने वाला ज्ञानी ही नहीं है, बल्कि इन सबके पार बहुत दूर पहुंचा, सबसे अलग, सबसे जुड़ा शून्य में डूबा, शून्य के साथ शून्य हुआ, ब्रह्म में लीन पूर्ण निर्वाण को प्राप्त हो गया है। जो लोग, भगवान रजनीश की जय बोल रहे हैं बुला रहे हैं सबको कि आओ और देखो इस सागर रूप को, इस आनन्द स्वरूप को और स्वयं ही जानो यह कौन है? क्या कहता है? क्यों कहता है? इसकी बातों पर थोड़ा विचार करो, कभी उन्हें आँख बन्द करके न मानो। सोचो शायद हमें उसकी कोई बात ठीक लग जाये, शायद हमारी जड़ता टूट जाये, शायद हम जाग जायें और जो हमारी असली मंजिल है उसकी खोज के लिए एक आव्हान बन जाये, एक पुकार उठ जाये हमारे भीतर भी और हम भी डूब सकें सागर की उन अज्ञात गहराइयों में, खो सकें अपने को उन अज्ञात प्रदेशों में, उस महाशून्य में, जिसका हमें कोई पता नहीं है।

●●●

(स्वामी अमृत अद्वैत, अमृतसर को लिखा गया भगवान श्री का एक पत्र)

मेरे प्रिय,

प्रेम। छोड़ दो—सब छोड़ दो प्रभु पर।
छोड़कर भी तो देखो।
छोड़ने का अलौकिक स्वाद भी तो लो?
किया बहुत—और पाया क्या?
अब न करके भी देखो।
न करना मनुष्य के करने की अंतिम अवस्था है।

रजनीश के प्रणाम
२६-२-७१

क्या है मार्ग ? ज्ञान, भक्ति या कर्म ?

(राजकोट में दिया गया भगवान श्री का दूसरा प्रवचन)

संकलन : मा योग समाधि
(सुश्री मीना मोदी, राजकोट)

मेरे प्रिय आत्मन्

मनुष्य को खंडों में तोड़ना है और फिर किसी एक खंड से सत्य को जानने की कोशिश करना है। अखंड सत्य को जानने का द्वार नहीं बन सकता है। अखंड को जानना हो तो अखंड मनुष्य ही जान सकता है। न तो कर्म से जाना जा सकता है क्योंकि कर्म मनुष्य का एक खंड है। न ज्ञान से जाना जा सकता है क्योंकि ज्ञान भी मनुष्य का एक खंड है। और न भाव से जाना जा सकता है, भक्ति से, क्योंकि वह भी मनुष्य का एक खंड है। अखंड से जाना जा सकता है और इन तीनों को जोड़कर अखंड नही बनता। इन तीनों को छोड़ कर जो शेष रहता है वह अखंड है। जोड़ से कभी नहीं बनता। **जोड़ में खंड मौजूद ही रहते हैं।** जैसे उदाहरण के लिये हिन्दू-मुसलमान को जोड़कर कभी हम एकता स्थापित नहीं कर सकते। हिन्दू-मुसलमान जुड़ जायें तो भी दो खंड सदा मौजूद रहते हैं। लेकिन हिन्दू-हिन्दू न रह जाय, मुसलमान मुसलमान न रह जाय तब जो शेष रह जाता है वह एकता है। हिन्दू-मुसलमान को जोड़ने से एकता नहीं होने वाली। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही हिन्दू-मुसलमान न रह जायें तो जो शेष रह जायेगा—आदमियत वह एक होगी।

बुद्धि को, भाव को, कर्म को, जोड़ने के भी प्रयास किये गये हैं। किन किन को हम जोड़ लें, लेकिन तीनों को जोड़ने से जो बनता है वह अखंड नहीं है। जोड़ने से जो बनता था, वह अखंड हो ही नहीं सकता। उसमें खंड मौजूद ही रहेंगे, जुड़े हुए होंगे। अखंड तो खंडों से मुक्त होकर ही मिलता है। जब हम खंडों से ऊपर उठ जाते हैं तब ही मिलता है। अखंड जोड़ नहीं है। अखंड खंड से मुक्त हो जाना है। मनुष्य का मन खंडन की प्रक्रिया है। मनुष्य का जो मन है, वह चीजों को खंड-खंड करके देखता है। जैसे आपने सूरज की किरण देखी है, सूरज की किरण अगर कांच के, प्रिज्म (Prism) के टुकड़े से निकाल दी जाय तो खंड-खंड हो जाती है। सात टुकड़ो में टूट जाती हैं। सात रग पैदा हो जाते हैं। सूरज का किरण सिर्फ शुभ्र थी। शुभ्र कोई रंग नहीं है। जब प्रिज्म से किरण टूटती है, तब सात रंग दिखायी पड़ने शुरू होते हैं। बुद्धि का जो प्रिज्म है, बुद्धि का जो टुकड़ा है, बुद्धि का जो देखने का ढंग है—वह चीजों को तोड़के दिखाने का ढंग है—**बुद्धि सदा तोड़के ही देख सकती है। बुद्धि कभी इकट्ठे होकर नहीं देख सकती। अखंड को नहीं देख सकती।** बुद्धि जीवन के सत्यों को कई खंडों में तोड़ देती है। वे खंड बुद्धि के द्वारा तोड़े गये हैं और ऐसे ही झूठ हैं, जैसे हम पानी में लकड़ी को डाल दें और लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ने लगे। तिरछी वह हो नहीं जाती, सिर्फ दिखाई पड़ती है। बाहर निकाल लें पानी से, सीधी हो जाती है। सीधी हो नहीं जाती सीधी थी ही। सिर्फ वह तिरछा दिखाई पड़ना जो पानी की वजह से पैदा होता था, माध्यम की वजह से पैदा होता था, वह विदा हो जाता है। पानी में डाल दें फिर वह लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ने लगेगी, क्योंकि लकड़ी पानी के भीतर तिरछी हो जाती है।

अगर अपना हाथ डालके लकड़ी को देखें पानी के भीतर तो पता चलेगा कि वह तिरछी नहीं है लेकिन हाथ तिरछा मालूम पड़ने लगेगा। पानी के माध्यम में सभी चीजें तिरछी हो जाती—दिखाई पड़ने लगती हैं। बुद्धि के माध्यम में सभी चीजें टूट जाती हैं, टुकड़ों में हो जाती हैं। और बुद्धि के तीन टुकड़े हैं। विचार है, भाव है, कर्म। इसलिये बुद्धि जब तक देखेगी तो तोड़ के

देखेगी और बुद्धि एक काम और भी कर सकती है कि इन तीनों को जोड़ लो, मगर वह जोड़ भी अखंड नहीं होगा। बुद्धि का जोड़ एकदम भ्रांत होगा। बुद्धि जोड़ सकती है ऊपर से लेकिन खंड फिर भी मौजूद रह जायेंगे। जिन्हें हम जोड़ेंगे वे मौजूद रह जायेंगे–जुड़े हुए भी मौजूद रहेंगे। अखंड सत्य को जानना हो तो मन को पार करना जरूरी है और उसे पार करने के लिए कर्म भी नहीं सहयोगी है। भाव भी सहयोगी नहीं। ज्ञान भी सहयोगी नहीं। इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है, फिर मैं आपको कल के संबंध में कुछ प्रश्न हैं उनकी बात करूँ।

अखंड को जानने के लिए मुझे भी अखंड ही खड़ा होना पड़ेगा क्योंकि मैं वही जान सकता हूं जो मैं हूं। मैं उसे नहीं जान सकता जो मैं नहीं हूं। आपके पास आंख है, इसलिए आप सूरज की किरण झांक पाते हैं। अगर आपके पास आंख नहीं तो आप सूरज की किरण को नहीं झांक पाते। सूरज को जानना हो तो आंख का होना जरूरी है। अंधा सूरज को नहीं जान पायेगा। आप ध्वनि को सुन पाते हैं तो उसके लिए कान होना जरूरी है। आपके पास कुछ होना जरूरी है तभी आप जान सकते हैं। अगर अखंड को जानना हो तो आपके पास क्या होना जरूरी है ? अगर अखंड को जानना हो तो आपके पास एक अखंड चेतना होना जरूरी है। Integrated Consciousness होनी जरूरी है। जिसमें कोई तोड़ न हो–खंड न हो, लेकिन अभी हमारे पास जो मन है, वह खंड-खंड ही है। मन के होने का ढँग ही यही है। मन के होने की व्यवस्था ही यही है। और मन के होने की यह व्यवस्था किसी दिशा में उपयोगी भी है। जरूरी है किन्हीं आयामों में, किन्हीं दिशाओं में खंड-खंड देखे और उसका उपयोग भी है। जब कोई आदमी सोच रहा हो·····अगर उसी समय भाव भी करे तो सोचना मुश्किल हो जायेगा। जैसे एक वैज्ञानिक विचार करता हो तो उसे समस्त भाव से मुक्त हो जाना जरूरी है। अगर भाव भी भीतर रखता है तो फिर वह वैज्ञानिक न हो सकेगा। भाव का मतलब होगा उसकी Prejudice, पक्षपात।

एक डाक्टर बेनर्जी हैं। उनका नाम—शायद आपने सुना हो, वह जयपुर विश्वविद्यालय में पुनर्जन्म के संबंध में खोजबीन करते हैं। वह मुझे मिलने बम्बई आये। दस-बीस लोग इकट्ठे हो गये थे, हम दोनों की बात सुनने को। उन डाक्टर बेनर्जी ने कहा कि मैं यह सिद्ध करना चाहता हूं—वैज्ञानिक रूप से कि पुनर्जन्म होता है। मैंने उनसे कहा कि यह जो बात आप कर रहे हैं ये बात भी अवैज्ञानिक हो गयी है। उन्होंने कहा क्या मतलब ? मैंने उनसे कहा वैज्ञानिक कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहता और अगर सिद्ध करना चाहता है तो उसका मतलब सिद्ध करने के पहले ही मान रखा है सिद्ध क्या करना है। आप कहते हैं 'मैं सिद्ध करना चाहता हूं वैज्ञानिक रूप से कि पुनर्जन्म है,' यह बात भी अवैज्ञानिक हो गयी है। अभी सिद्ध नहीं हुआ और आपने सिद्ध मान रखा है—मन में, उसी को आप सिद्ध कर रहे हैं। वैज्ञानिक यह कहता है कि मुझे पता नहीं कि पुनर्जन्म है या नहीं। जो भी होगा उसमें मैं जानना चाहता हूं। उसका अपना कोई भाव नहीं होना चाहिये। अन्यथा वह अपने भाव के अनुरूप सिद्ध कर लेगा। वैज्ञानिक के पास भाव होगा तो वह वैज्ञानिक नहीं हो सकता। उसे सब भाव छोड़ देने पड़ेंगे। उसे सिर्फ विचार करना पड़ेगा, उसके पास कोई पक्षपात नहीं होना चाहिये। अगर उसके पास जरा भी पक्षपात है तो वह जो खोज करेगा वह खोज वैज्ञानिक नहीं रह जायेगी।

मन को तो खंड करना जरूरी है। मन का खंड होना बहुत आवश्यक है। नहीं तो विचार असंभव हो जायेगा। इसलिये बहुत भावुक लोग विचार नहीं कर पाते। उनका भाव बाधा देता है। इसलिये जो कौमें बहुत भाव से भरी रहती हैं, वह वैज्ञानिक नहीं हो पातीं। जैसे हमारी ही कौम। वह भाव से अति प्रेरित है इसलिये विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया। विज्ञान के जन्म के लिये भाव को बिल्कुल हट जाना जरूरी है। और अगर कोई बहुत बहुत भावुक हो और बीच-बीच में विज्ञान और विचार उसमें प्रवेश करें तो भी मुश्किल

में पड़ जायेगा। अगर आपको किसी का चेहरा सुन्दर लगता है और आपका विचार बीच में आ जाये और कहने लगे, क्यों सुन्दर लगता है ? तो आप मुश्किल में पड़ जायेंगे क्योंकि सुन्दर विचार की बात नहीं सिर्फ भाव की बात है । उसके लिए कोई तर्क की जरूरत नहीं । और अगर तर्क बीच में आया तो आप थोड़ी देर में ही मुश्किल में पड़ जायेंगे । पता लगाना मुश्किल हो जायेगा कि क्यों सुन्दर लगता है ? अगर मुझे किसी से प्रेम हो गया और मैं विचार करने लगूं—वैज्ञानिक रूप से कि मेरा प्रेम क्यों हो गया ? तो प्रेम खो जायेगा। प्रेम नहीं बचेगा क्योंकि प्रेम के लिए वैज्ञानिक विचार की कोई भी जरूरत नहीं । इसलिए जो लोग वैज्ञानिक ढंग से विचार, चिंतन करेंगे वह प्रेम करने में असमर्थ हो जावेंगे ।

जो लोग बहुत वैज्ञानिक ढंग से विचार करते हैं, वह कविता नहीं लिख सकते क्योंकि काव्य में विचार की कोई जरूरत नहीं । वहाँ तो विचार जितना कम होगा उतनी ही काव्य की गति होगी । अगर एक वैज्ञानिक से जाकर मैं कहूं कि मेरी जो एक प्रेयसी है उसका चेहरा मुझे चाँद जैसा मालूम पड़ता है, तो वह कहेगा आपका दिमाग खराब हो गया, कहाँ चाँद और कहाँ स्त्री का चेहरा। इसके बीच ताल-मेल ही नहीं है । अगर इनको तराजू पर रख कर तौलें तो कोई तौल नहीं । कहाँ चाँद, कहाँ स्त्री का चेहरा । चांद से स्त्री के चेहरे से क्या संबंध । वह मुझे मुश्किल में डाल देगा और मैं सिद्ध न कर पाऊँगा कि किसी स्त्री का चेहरा चाँद जैसा हो सकता है । हो भी नहीं सकता । लेकिन भाव में हो सकता है, गणित में नहीं हो सकता । गणित और भाव की दुनिया अलग है, उनकी यात्रा अलग है ।

मन तीन आयाम में काम करता है । और जिसे कर्म करना हो उसे भी बहुत भावुक नहीं होना चाहिये । अन्यथा कर्म में बाधा पड़ेगी । जिसे कर्म करना हो उसे भी बहुत विचार में नहीं पड़ना चाहिये । नहीं तो विचार बाधा डालेगा । मैंने सुना है कि एक विचारक पहले महायुद्ध में भर्ती हो गया था। युद्ध जोर पर था और वह विचारक युद्ध में भर्ती हो गया । लेकिन वह विचारक था । जब उसे मिलिट्री में ट्रेनिंग दी गयी और कहा गया बांये घूम जाव तो सारे लोग बांये घूम गये और वह विचारक खड़ा ही रहा । उसके प्रधान ने उससे कहा आप घूमते क्यों नहीं ? उन्होंने कहा मैं बिना विचारे कुछ नहीं कर सकता हूं । मैं सोचता हूं कि बाँये क्यों घूम जाऊँ ? प्रधान ने कहा कि अगर इस तरह सोच विचार चलेगा तो तुम हमारे काम के नहीं । मिलिट्री में सोच-विचार से काम नहीं चल सकता—आज्ञा परम । उसमें सोच-विचार की आपको जरूरत नहीं; कहा बाँये घूम जाओ तो बांये घूम जायें । लेकिन उस आदमी ने कहा, पहले मैं सोच तो लूं कि क्यों घूम जाऊँ ? उसे बहुत दिन सिखाया गया लेकिन वह बांये दांये भी घूम न सका । सोचे ना तो कर ना सके लेकिन भर्ती हो गया था तो उसके प्रधान ने उसे मिलिट्री का मैस (Mess) था—भोजनालन था वहां भेज दिया और कहा तुम वहीं कुछ काम करो । उसे, मटर बनने आया था सब्जी के लिए । तो उसे कहा कि तुम छोटे मटर अलग कर लो और बड़े मटर अलग कर लो । घंटे भर बाद जब उसका प्रधान आया तो वह थाली में मटर जैसे थे वैसे रखे हुए बैठा था आंख बंद किये हुए । उसके प्रधान ने कहा तुम क्या कर रहे हो ? अभी तक यह भी नहीं कर पाये ? उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं । आप ठीक कहते हैं, छोटे और बड़े अलग कर दूं लेकिन कुछ मटर ऐसे भी हैं जो बिलकुल बीच के न बड़े न छोटे हैं। उनको मैं कहां कर दूं ? और जब तक यह तय न हो जाय तब तक कुछ भी करना मेरे लिए संभव नहीं है। मैं पहले सोच लूं तब कुछ करूं ।

मन विभाजित है, मन के काम के लिए जरूरी है कि मन विभाजित हो । मन के कंपार्टमेंट (Compartment) में आवश्यक है कि वहां खंड-खंड हो और इसलिए मन सत्य को नहीं जान पाता । क्योंकि सत्य कोई उपयोगिता नहीं है । सत्य तो, अखंड जो है उसे जानने की बात है । शायद जानना कहना भी ठीक नहीं क्यों—

कि जानने से ज्ञान का ख्याल आता है। इसलिए सत्य का जब हम कहते हैं जानना, वह ज्ञान का ख्याल मत ले लेना आप। सत्य को जानने का मतलब है सत्य के साथ एक ही हो जाना। लेकिन शायद हो जाने से भाव का ख्याल आता है। जिससे हम प्रेम करते हैं उसके साथ एक हो जाते हैं लेकिन सत्य के साथ एक हो जाने का भी यह अर्थ नहीं है जो भाव का अर्थ हो जाता है। इसलिए सच बात तो यह है कि सत्य का हम जानना कहें होना कहें, करना कहें, कोई भी शब्द कारगत नहीं हैं। क्योंकि हमारे सारे शब्द मन की तीन चीजों के लिए काम के लिये बनाये हैं। या त कर्म के लिए, या भाव के लिए, या ज्ञान के लिए। हमारी सारी भाषा मन की बनायी भाषा है। इसलिए जो सत्य को जानता है वह कहता है कि कहना मुश्किल है क्योंकि उसे कहने के लिए मन में कोई भाषा विकसित नहीं की है। मन में जो भाषा विकसित है, वह तीन कामों के लिये है। मन काम कर सकता है, उसकी भाषा है उसके पास। मन प्रेम कर सकता है, उसकी भी भाषा है, उसके पास। मन विचार कर सकता है, उसकी भी भाषा है। लेकिन मन जब तीनों नहीं करता है तब उसके लिये उसके पास कोई भाषा नहीं। और उसका कारण है।

भाषा हो भी नहीं सकती, क्योंकि जब मन ही नहीं रह जाता, तब जो रह जाता है वह मन नहीं है। इसलिये उसकी भाषा भी नहीं होगी। और फिर भाषा के लिये जरूरी है कि दो हों; बोलने वाला हो—सुनने वाला हो। जहां तक मन है वहां तक भाषा है क्योंकि जहां तक मन है वहां तक मैं हूं और आप हैं। लेकिन जहां मन नहीं रह गया, वहां न कोई सुनने वाला है, न कोई बोलने वाला है। वहां न मैं हूं, न आप हैं। वहां तो जो है वही रह गया। वहां मैं-तू का भेद भी गिर गया। वहां कौन बोले ? कौन सुने ? इसलिये वहां भाषा नहीं विकसित हो सकी। सत्य को बताने वाली कोई भाषा नहीं विकसित हो सकी। इसलिये जितने भी शास्त्र हैं वह सत्य को कहने की कोशिशें-असफल कोशिशें, सफल कोशिशें नहीं। अभी तक कोई कोशिश सफल नहीं हो पायी और ऐसा नहीं है कि आगे सफल हो जायेगी। आगे भी सफल नहीं हो सकती। उसका कारण सिर्फ यही है कि मन के बाहर भाषा का उपाय नहीं। लेकिन आदमी तो भाषा से ही समझेगा। आदमी भाषा के बाहर कैसे समझेगा ? क्योंकि आदमी कहता है भाषा में ही समझेंगे तो फिर तीन रास्ते हैं। फिर कर्मयोग है, भक्तियोग है, ज्ञानयोग है। वे भाषा के भीतर कहने के उपाय हैं, लेकिन जो कहा जा रहा है वह सत्य नहीं रह जाता क्योंकि जो कहा जा रहा है वह मन के खंडों से कहा जा रहा है। वह उतना ही झूठा हो गया। जैसे पानी के माध्यम में लकड़ी तिरछी हो जाती है ऐसे ही मन के माध्यम में सत्य जो है तीन खंडों में बंट जाता है। और बंटते ही झूठ हो जाता है। वह अखंड होकर ही सत्य हो सकता है। ऐसे ही जैसे मैं फूल को एक देखूं और फूल के पचास टुकड़े कर डालूं और मैं कहूं कि फूल का जो सौंदर्य था, वह पचास टुकड़ों में से एक-एक टुकड़ा आपको दे दूं और आपसे कहूं कि जो सौन्दर्य मैंने जाना था, न सही पूरा लेकिन पचासवां हिस्सा तो आप भी जान लेंगे। नहीं, पचासवां हिस्सा भी आप नहीं जान सकेंगे क्योंकि फूल का जो सौंदर्य था वह अखंड फूल में था। पचास टुकड़े करके पचासवां हिस्सा आयेगा उसके सौंदर्य का कोई हिस्सा नहीं आयेगा, बल्कि आप थोड़े हैरान भी होंगे कि यह आदमी पागल मालूम पड़ता है। कहता है फूल बड़ा सुन्दर था। मेरे हाथ में टूटी हुई पंखुड़ी आयी है, उससे कुछ भी पता नहीं चलता कि सुन्दर क्या है ? आप सोचेंगे कि अगर मैं कहूं कि यह पचासवां टुकड़ा है तो आप सोचेंगे जो मेरे पास अगर पचास का गुणा मैं कर दूं तो शायद सब कुछ ठीक हो जायेगा। आप अपनी पंखुड़ी में पचास का गुणा भी मन में कर लेंगे तब भी आप कहेंगे सौंदर्य नहीं बनता। फूल पचास गुणा नहीं था। फूल की बात ही अलग थी। वह अखंड था।

एक आदमी है जिन्दा। हम उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालें। हड्डी मांस फैला दें। कोई उसे प्रेम करता रहा हो, और कहता रहा हो कि बहुत सुन्दर है, बहुत

प्यारा आदमी है फिर हम उसे ले आये कि यह रहा तुम्हारा सुन्दर और प्यारा आदमी। तो वह कहेंगे कि यह तो वह आदमी ही नहीं है। इन हड्डियों को मैंने प्रेम नहीं किया। इस चमड़े को मैंने कभी प्रेम नहीं किया। इस मांस मज्जा को मैंने कभी प्रेम नहीं किया। मैंने तो जिसे प्रेम किया था वह नहीं है और हम कहें कि वह पूरा का पूरा है। आप तराजू पर तौल लें क्योंकि जितना वजन उस आदमी का था उतना ही वजन इस आदमी का है। आप जाके लेबोरेटरी में जांच करवा लें, उस आदमी में जितना एल्मोनियम था उतना एल्मोनियम अब भी उसकी हड्डी में है। जितना फोस्फरस था उतना फोस्फरस अब भी है। आप सारी जांच करवा लें। जितना खून था वह सब खून मौजूद है। फिर वह प्रेम करने वाला कहे कि क्षमा करिये, यह वह आदमी नहीं है क्योंकि वह आदमी एक अखंड इकाई था और ये खड-खंड टुकडे हैं। और कुछ चीजें हैं जो अखंड में ही प्रगट होती हैं और खंड में खो जाती हैं। वे खंड में होती ही नहीं। मन खंड करने की प्रक्रिया है। मन जो है वह चीजों को तोड़ता है। उपयोगिता है उसकी इस जगत में, लेकिन उस जगत में नहीं। इस जगत में जहां हम आदमियों के बीच जीते हैं और दूसरे मनों के साथ जीते हैं, वहां उसकी उपयोगिता है। लेकिन जहां हमें परमात्मा के साथ जीना हो वहां उसकी कोई उपयोगिता नहीं। वहां मन एकदम छोड़ देना पड़ता है।

जगत के लिये मन एक सार्थक साधन है, सत्य के लिये मन एक बाधा है। जगत के लिये मन एक सहयोग है, सत्य के लिये मन एक Hindrance है, एक अवरोध है। और हमारी कठिनाई यह है कि मन से जगत के काम चल जाते हैं, तो सत्य में काम क्यों न चले ? हम उसी तरह की भूल कर रहे हैं जैसे कि एक बैलगाड़ी जमीन पर चलती है, लेकिन बैलगाड़ी आकाश में नहीं उड़ सकती। अगर हम सोचें कि बैलगाड़ी जब जमीन पर चलती है तब आकाश में क्यों न उड़ेगी ? हमारा सोचना गलत है। असल में बैलगाड़ी जमीन पर चलती है, इसलिये आकाश में नहीं उड़ सकती। आकाश में उड़ने के लिये दूसरा ही वाहन होगा, क्योंकि आकाश का डायमेंशन बदल जाता है। बैलगाड़ी को चलना पड़ता है सीधी रेखा में—Horizontal, क्षितिज रेखा में चलना पड़ता है। हवाई जहाज को उड़ना पड़ता है Vertical ऊपर की तरफ। बैलगाड़ी को जाना पड़ता है आगे की तरफ, हवाई जहाज को जाना पड़ता है ऊपर की तरफ। वह यात्रा बिल्कुल भिन्न है। हवाई जहाज का वाहन बिल्कुल भिन्न है। संसार में जाना पड़ता है बाहर की तरफ, सत्य में जाना पड़ता है भीतर की तरफ। संसार में संबंधित होना पड़ता है दूसरों से, सत्य में संबंधित होना पड़ता है अपने से। सत्य में मन का कोई उपयोग नहीं है। और हमारे जो तीन मार्ग हैं, ज्ञान के, भक्ति के, कर्म के, वह मन के ही मार्ग हैं। इसलिये उन मार्ग से कोई कभी न सत्य तक पहुंचा, न पहुंच सकता है।

● एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं विचार मौलिक नहीं होता, ऑरिजनल नहीं होता, ज्ञान मौलिक नहीं होता तो फिर जो आप बातें कह रहे हैं यानि कि मैं जो बात कर रहा हूं, वह मौलिक है, उधार नहीं है, बासी नहीं है, वह कैसे ?

जब मैंने यह कहा कि विचार मौलिक नहीं होता तब मैंने यह नहीं कहा कि मौलिक कुछ भी नहीं होता। दृष्टि मौलिक हो सकती है। दृष्टि विचार नहीं है। दर्शन विचार नहीं, अनुभूति विचार नहीं। वही तो मैं कह रहा हूं—**सत्य का अनुभव मौलिक होता है। सत्य का विचार मौलिक नहीं होता।** जब आप सत्य को जानेंगे, तो वह जानना बिल्कुल ऑरिजनल है, बिल्कुल मौलिक है। वह उधार नहीं है बासी नहीं है। यह बात थोड़ी सी बारीक है—समझ लेना चाहिए। जब आप सत्य को जानेंगे तो वह जानना मौलिक होगा, लेकिन जब आप सत्य के संबंध में जानते हैं, तब वह मौलिक नहीं होता। सत्य के संबंध में जानना, विचारों को जानना है। सत्य को जानना विचारों को जानना नहीं है। सत्य को जानना, सत्य की अनुभूति तो सदा मौलिक होती

है लेकिन सत्य के शास्त्र कभी मौलिक नहीं होते। लेकिन दो बातें हैं। अगर मैं सत्य को जान लूं और आपसे कहने आऊँ, तो मेरी प्रतीति तो मौलिक होगी, लेकिन मेरी भाषा मौलिक नहीं होगी। भाषा तो मुझे वही उपयोग करनी पड़ेगी, जो आप करते हैं और इसलिये तो कठिनाई है सत्य को कहने की, क्योंकि सत्य है सदा ताजा और भाषा है सदा बासी। इसलिये ताजे को जब हम बासी में डालते हैं, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है, तब कहने में बड़ी मुश्किल हो जाती है। फिर जरूरी नहीं है कि ताजा आप तक पहुंचे, लेकिन आप तक कैसे पहुंचेगा। आप तक तो बासी शब्द ही पहुंचेगा। इसीलिए तो कहता हूं, मेरे सुनने से, किसी और को सुनने से सत्य नहीं मिल जायेगा। सिर्फ बासी सत्य मिलेगा।

सत्य अगर खोजना हो तो आपको ही उस जगह खड़ा होना पड़ेगा, जहां सत्य मिलता है। फिर मैं किसलिये बोल रहा हूं ? कोई, किसलिये बोल रहा है ? कोई किसलिये लिख रहा है ? लिखने और बोलने का उपयोग यह नहीं कि उससे आपको सत्य मिल जायेगा। लिखने और बोलने का उपयोग एक ही उपयोग है कि अगर आपको तड़प और प्यास भी मिल जाये तो बस काफी है। अगर आपको यह ख्याल भी आ जाय, मेरी सारी परेशानी से, बोलने की, समझाने की, मेरी आँखों से, मेरे उठने बैठने से, मेरी चुप्पी से,—अगर इतनी सिर्फ प्यास भी जग जाये कि हो सकता है यह आदमी कहीं पहुंचा हो ? शायद ऐसी कोई जगह हो ? यह ख्याल भी आ जाय। और आप उस ख्याल से, उस प्यास से किसी खोज में चले जाएँ, तो बस काफी हो गया।

अब तक जो भी कहा गया है, उससे सत्य नहीं मिला। सत्य की प्यास भी जग जाय तो काफी है। प्यास जग सकती है। मैं जो बोल रहा हूं वह तो भाषा होगी। वही भाषा होगी जो हम हजारों साल, लाखों साल से, उपयोग कर रहे हैं, वह बासी है। भाषा कैसे ताजी हो सकती है ? लेकिन यह हो सकता है कि यह भाषा मैंने किताबों से इकट्ठी की हो और मेरे पास कोई भी अनुभव न हो, तब उस भाषा के पीछे भी कोई मौलिक अनुभव न होगा। तब वह भाषा मुर्दा होगी, वह लाश होगी। एक लाश और जिन्दा आदमी में क्या फर्क पड़ता है ? लाश और जिन्दा आदमी में इतना ही फर्क होता है कि लाश सिर्फ लाश होती है। उसके पास और कुछ नहीं होता। जिन्दा आदमी भी लाश होता है, लेकिन और कुछ भी होता है, भीतर एक प्राण भी होता है। अगर मैं शास्त्रों से शब्दों को उठाके आपसे कह दूं तो वह लाश होंगे—मरे हुये। लेकिन अगर मेरा अनुभव हो तो उनके भीतर एक प्राण भी होगा, एक जिन्दा बात भी होगी। लेकिन वह जिन्दा बात आप तक पहुंचेगी ? बहुत मुश्किल है। हो सकता है आप तक सिर्फ शब्द ही पहुंचें। बहुत कठिनाई है, सदा की कठिनाई। कभी हल नहीं होगी। और कृपा है बड़ी परमात्मा की कि हल नहीं होनी चाहिये, क्योंकि अगर मेरे शब्दों से आपको सत्य मिल जाये तो वह सत्य इतना सस्ता होगा, उसकी कोई कीमत नहीं रह जायेगी। नहीं वह सत्य आपको ही खोजना पड़ेगा क्योंकि उसको खोजने में, उसकी यात्रा में, उसमें डूबने में, उस तक जाने में, जाने की यात्रा में, मिटने में, उस सब में जो होगा वही बहुमूल्य है। अगर वह भाषा उठाके हाथ में दिया जा सके तो बेईमानी हो जायेगी, अर्थहीन हो जायेगा।

एक मां अपने बच्चे को पैदा करती है और एक मां किसी दूसरे के बच्चे को गोद ले लेगी। कभी फर्क अनुभव किया है कि दोनों में क्या फर्क है ? मां जब बच्चे को पैदा करती है, तो प्रसव की पीड़ा से गुजरती है। असल में उधार बच्चा ले लेना ज्यादा आसान है। प्रसव की पीड़ा से बच जाते हैं, लेकिन उधार बच्चा उधार ही है। और माँ कभी माँ नहीं बन पाती। बस दिखावा पैदा होगा। बेटा उसे माँ कहने लगता है, वह भी अपने को माँ मानने लगती है। लेकिन, एक बहुत बहुमूल्य अनुभव जो माँ होने का है, वह उसे कभी नहीं मिल सकेगा। कैसे मिल सकता है ? क्योंकि माँ होना—बेटे को उधार लेने से कैसे फलित हो सकता

है ? माँ होने में वह नौ महीने की पीड़ा भी सम्मिलित है, वह प्रसव भी सम्मिलित है, बच्चे को जन्म देने के कष्ट भी सम्मिलित हैं। उस सारे कष्ट के आधार बिना माँ होने की स्थिति का जन्म ही नहीं हो सकता। ध्यान रहे, जब बेटा पैदा होता है, तब सिर्फ बेटा ही पैदा नहीं होता, साथ में माँ भी पैदा होती है। माँ को भी पैदा होना पड़ता है। इधर बेटा पैदा होता है, उधर पीछे मां पैदा होती है। यह घटना एक साथ घटती। हम आम तौर से समझते हैं कि बेटा ही पैदा हुआ, इसलिये भूल हो जाती है। हम समझते हैं कि बेटे को तो उधार भी लिया जा सकता है—माँ बन जायेगी। माँ कैसे पैदा होगी ? बेटे के पैदा होने के क्षण में माँ भी पैदा होगी। इसलिए उधार बेटे से काम नहीं चलता। धोखा हो सकता है। सत्य उधार नहीं लिया जा सकता। सत्य को पैदा करने की प्रसव पीड़ा से गुजरना जरूरी है।

अनुभूतियाँ मौलिक ही होती हैं। सिर्फ अनुभूतियाँ ही मौलिक होती हैं। विचार मौलिक नहीं होते। लेकिन अनुभूति को भी कहना हो तो विचार का उपयोग करना पड़ता है, लेकिन तब विचार केवल वाहन हैं। वाहन के भीतर जो बैठा है, उसे आप अगर पहचानेंगे तो मौलिक का पता चले और अगर वाहन को ही पहचानेंगे और भीतर को नहीं पहचान पायेंगे तो आपको भी पता चलेगा कि यह वाहन बहुत बार देखा है, इस वाहन में तो कोई बात नहीं। शब्द तो बहुत बार सुने हैं और बहुत बार पढ़े हैं। वही तो कहा जा रहा है, जो कहा गया था। गीता में भी वही है, कुरान में भी वही है, बाइबिल में भी वही है—तब आप खो गये। जब मैं कह रहा हूं, जो कह रहा हूं, जिन विचारों से, जिन शब्दों से कह रहा हूं, वह तो मौलिक नहीं हो सकते। वह कभी मौलिक नहीं हो सकते। अगर वह मौलिक हों तो आप समझ ही न पायेंगे। मैं एक ऐसी भाषा बोल सकता हूं जो बिलकुल मौलिक हो। मौलिक भाषा का एक ही मतलब होगा कि जिसको मैं ही समझ सकता हूं और कोई न समझ सके क्योंकि अगर और कोई समझता है, तो बासी हो ही जायेगी क्योंकि किसी और को भी पता है।

मौलिक भाषा तो सिर्फ पागल ही बोल सकते हैं। पागल मौलिक भाषा बोलता है, इसलिये तो उसे पागलखाने में बंद करना पड़ता है क्योंकि वह अपनी भाषा को अकेले ही समझते हैं। कोई और नहीं समझते। मौलिक भाषा बोलनी हो तो पागल होना जरूरी है, क्योंकि उसको आप ही समझेंगे और जिस भाषा को आप ही समझेंगे उसे बोलने की भी क्या जरूरत ? उसको बिना बोले भी चल सकता है। उसे कोई समझेगा भी ? भाषा तो बासी होगी, क्योंकि भाषा हमारे बीच का संबंध है। हम सबको समझनी चाहिये। तभी उसका कोई अर्थ है, अन्यथा वह व्यर्थ है। लेकिन अनुभूति मौलिक हो सकती है और होनी चाहिये। अनुभूति ही मौलिक होती है, लेकिन अनुभूति और विचारों में ऐसी ही भूल होती है, जैसे अपने बेटे और उधार बेटे में भूल होती है।

मैं एक घर में मेहमान होता हूं। उस घर की जो महिला है उसको बेटा नहीं हुआ तो उसने, थोड़ी बहुत नहीं बहुत करोड़पति महिला थी, उसने सत्तर अनाथ बच्चे पाल रखे, और बढ़ाते चली जाती। कोई अनाथ बच्चा आ जाये, तो उसको पालना शुरू कर देती। वह पूरा घर जो है उनका, एक अनाथालय हो गया। लेकिन फिर भी वह औरत अभी मां नहीं हो पायी। सत्तर बच्चे भी मां नहीं बना पाये। जब मैं उनके घर मेहमान हुआ तो मैने कहा कि कब रूकेगी यह यात्रा ? सात सौ बच्चे ले लो तो भी माँ नहीं बन पाओगी। मैंने कहा जब तुमने एक बच्चा लिया तब तुम मां नहीं बन पायीं, दूसरा लिया, अब सत्तर बच्चे इकट्ठे हो गये घर में, लेकिन तुम अभी भी मां नहीं बन पायीं, तुम सात सौ ले लो तो भी मां नहीं बनोगी। उस महिला की आँख में आंसू आ गये, उसने कहा, यह आप क्या कहते हैं। यह तो मुझे भी अनुभव होता है। बच्चे तो मैंने इतने ले लिये, लेकिन मां होने का सुख नही मिल पाया। मां को जन्म लेना पड़ता है, वह बेटे के साथ ही पैदा होते हैं। उधार बेटे काम नहीं कर सकते। उधार सत्य भी काम नहीं

कर सकते, और विचार और ज्ञान उधार है, इसलिए मैं कहता हूं, ज्ञान मार्ग नहीं है। इसे थोड़ा समझ लें।

सब ज्ञान उधार है। जानना उधार नहीं है, ज्ञान उधार है। जानने में और ज्ञान में थोड़ा फर्क है। ज्ञान का मतलब Knowledge और जानने का मतलब Knowing। जानने की जो मेरी शक्ति है, वह तो मौलिक है, लेकिन मैंने जो ज्ञान इकट्ठा कर लिया वह सब उधार है। जानने की शक्ति तो प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी है, लेकिन ज्ञान जो उसने इकट्ठा किया है, वह अपना नहीं और मजे की बात यह है कि जानने की शक्ति उतनी ही कम हो जाती है, जितना ज्ञान इकट्ठा हम कर लेते हैं। इसलिए पंडित का ज्ञानी होना असम्भव है। इतना वह जान लेता है, दूसरों से इतना उधार-उधार कर लेता है, वह इतना इकट्ठा कर लेता है कि उसकी अपनी जानने की क्षमता डिग जाती है। फिर कभी तो जान ही नहीं पाता क्योंकि जानने के पहले ही उसे बहुत कुछ पता होता है। उसे अपनी तरफ से जानने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। वह सदा दूसरों की आंख से जान लेता है। अगर कोई सवाल उसकी जिंदगी में उठता है तो उसके पास उत्तर पहले से होते हैं, सवाल पीछे उठता है। अगर उससे कोई पूछे आत्मा है ? तो उसे जानना नहीं पड़ता, वह कहता है, क्योंकि उपनिषद् में लिखा है, क्योंकि गीता कहती है, क्योंकि कृष्ण कहते हैं, महावीर कहते हैं—आत्मा है। यह उसका उत्तर अपना नहीं है, यह उत्तर उधार और बासी हैं। और मजा यह है कि उसने कोई प्रश्न ही ईमानदारी से नहीं पूछा, नहीं तो अपना उत्तर भी आ सकता था। उसने पूछा आत्मा है ? ये पूछने के पहले भी वह जान रहा है कि आत्मा है क्योंकि गीता कहती है। क्योंकि बुद्ध कहते हैं। बुद्ध गलत कहेंगे ? गीता झूठ कहेगी ? मैं भी नहीं कहता कि वह गलत कहते हैं। लेकिन वह बुद्ध कहते हैं। वह जो भी कहते हैं अपने लिए कहते हैं। वह तुम्हारे लिये सही नहीं मेरे लिये सही है। वह उनके लिये सही है, वह जान के कहते हैं।

बुद्ध के पास एक आदमी आया। वह गाय चराने वाला एक चरवाहा था। उसने बुद्ध से कहा—आप मुझे भी दीक्षा दे दो। बुद्ध ने कहा—तेरी मर्जी है तो आजा, लेकिन मैंने तेरे सम्बन्ध में एक खबर सुनी है। मैंने सुना है कि तू नदी किनारे बैठकर दूसरों की गाय भैंसें गिना करता है। उसने कहा—हां यह मेरी सदा की आदत है। मुझे गांव भर की गाय-भैंस की संख्या मालूम है। बुद्ध ने कहा—तेरी अपनी भी कोई गाय-भैंस है ? उसने कहा यह तो मुझे ख्याल नहीं आया। दूसरों की गिनती में मैं इतना उलझा रहा कि वह सवाल ही नहीं उठा कि अपनी भी कोई गाय-भैंस है। और सारे गांव की गाय-भैंस गिनते-गिनते मुझे तो ऐसा लगा कि ये सभी गाय-भैंस तो मेरी हैं। आप भी ऐसा सवाल उठाते हैं? यह तो मन में सवाल ही नहीं उठा। बुद्ध ने कहा—दूसरों की गाय-भैंसें कितना ही गिनले तू ये सवाल ही भूल जाय कि अपनी भी कोई गाय-भैंस है। बुद्ध ने कहा—दीक्षा तो तू ले ले लेकिन ध्यान रख दूसरों के सत्यों को मत गिनना, नहीं तो पुरानी आदत गाय-भैंसे गिनने की यहां ले आयेगा और गिनता रहे कि बुद्ध क्या कहते हैं ? कृष्ण क्या कहते हैं ? और राम क्या कहते हैं ? इसकी गिनती में मत पड़ जाना। तू क्या कहता है ? तेरा भी कुछ कहना है इस जगत में ? तू भी पैदा हुआ है तो कुछ कहने योग्य तेरे पास है ?

अगर हम अपने से पूछें कि मेरे पास भी कुछ कहने योग्य है जो मैंने जाना ? तो हम एकदम दीन-दरिद्र मालूम पड़ेंगे। हमारे पास कहने योग्य कुछ नहीं होता। हमने कुछ जाना नहीं। इस दरिद्रता को छिपाने के लिए हम दूसरों के शब्दों को दोहराये चले जाते हैं। रोज सुबह उठके शास्त्र पढ़ लेते हैं, कंठस्थ कर लेते हैं और धीरे-धीरे यह भूल भी जाते हैं कि दूसरे की गाय-भैंस गिन रहे हैं। यह गाय-भैंस गिनने से क्या फायदा हो सकता है ? उसको हुआ होगा, मुझे क्या हो सकता है ? हां, इतना हो सकता है कि मैं भूल जाऊं कि अपना भी सवाल है और अपना ही उत्तर चाहिये। ध्यान रहे,

सवाल मेरा और उत्तर आपका, काम नहीं चलेगा। सवाल मेरा है तो उत्तर भी मेरा चाहिये। एकाध सवाल है जिसका मेरा उत्तर हो जो मेरी जिन्दगी से आ गया हो, जो मेरे भीतर से उठा हो, जो मेरे प्राणों से निकला हो, जिसका बीज मेरे भीतर अंकुर से बना हो, जो मेरा हो। अगर मेरे पास अपना कोई उत्तर नहीं है तो सारी दुनिया के उत्तर इकट्ठे करके भी कुछ भी नहीं होने वाला। मैं दीन ही रहूंगा, दीन ही मरूंगा-गरीब भिखमंगा।

ध्यान रहे, धन के संबंध में भिखमंगा होना इतना बुरा नहीं क्योंकि भिखमंगा आखिर अगर आपके द्वार पर हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है तो ज्यादा से ज्यादा अपना पेट ही भरता है, रोटी ले लेता है। लेकिन ज्ञान के संबंध में जो भिखमगे हैं वह अपनी आत्मा को भी भर लेता है। हम सड़क पर भीख मांगते आदमी को तो कहते हैं--बुरा है, तेरे पास हाथ पैर मजबूत हैं, क्यों भीख मांगता है ? लेकिन कभी हम अपने संबंध में नहीं सोचते कि मेरी चेतना पूरी ठीक है--मैं क्यों भीख मांग रहा हूं ? क्यों कृष्ण के, राम के दरवाजे पर खड़ा हूं ? और ध्यान रहे पेट भर लेना इतना बुरा भी नहीं है क्योंकि पेट यहीं छूट जायेगा। आत्मा भर लेना बहुत बुरा है क्योंकि वह आगे भी साथ आने वाली है। मैंने भीख मांगकर शरीर में खून बनाया था कि कमा के खून बनाया था, मरघट में दोनों शरीर एकसे जल जायेंगे। लेकिन वह उपाय सरल दीखता है। ज्ञान मार्ग बहुत सरल दिखता है। दिखता यह है कि ज्ञान इकट्ठा कर लो। दूसरों ने जान लिया तो हमें जानने की जरूरत नहीं। हम उनको याद कर लें, कंठस्थ कर लें, हमने भी जान लिया। उस ज्ञान में जो दब जायेगा उसको जानने की, Knowing की, क्षमता धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। जो आदमी दूसरों के पैरों से चलेगा वह अपने पैर से चलना भूल जाय तो आश्चर्य तो नहीं ! और जो आदमी दूसरों की आँखों से देखेगा अगर उसकी अपनी आँखें देखना बन्द करदें तो उसमें हैरानी की बात नहीं। अगर अपनी आँखों से देखना है तो अपनी ही आँखों से देखना पड़ेगा और अगर अपने पैरों में चलने की ताकत बनाये रखनी है तो अपने ही पैरों से चलना पड़ेगा और अगर अपनी चेतना को यात्रा पर ले जाना है तो अपनी ही चेतना को ले जाना पड़ेगा।

ज्ञान ने बड़ा धोखा दिया है और आश्चर्य तो यह है कि ज्ञान का धोखा इतना सूक्ष्म है कि पता नहीं चलता। ज्ञानी और पंडित में फर्क ही नहीं कर पाते। पंडित अक्सर ज्ञानी होने का धोखा दे जाता है। ऐसा नहीं कि दूसरों को दे जाता है। दूसरों को दे दे तो कोई हर्ज नहीं है। अपने को भी दे जाता है। उसको सबसे बड़ा धोखा खुद का हो जाता है। उसको लगता है कि मैंने तो जान लिया। कितने लोग मेरे पास आते हैं, उन्हें देखकर मेरा हृदय रोने लगता है। वे जो बातें कर रहे हैं वह सारी की सारी बातें उन्होंने कहीं से सीख लीं और उन्हें इस भांति कर रहे हैं कि वह सारी बातें उनकी हैं। और फिर उसको झकझोरो, हिलाओ, उनसे कहो कि ये बातें आपकी नहीं हैं तो वह बड़ा नाराज होता है। नाराज होगा ही। अगर किसी आदमी को यह सवाल हो कि मैं अमीर हूं और हम बता दें कि तुम्हारे खीसे खाली हैं तो वह नाराज होगा। और वह गुरुओं के पास जा रहे हैं इसलिये कि उसका ज्ञान और बढ़ जाय और Accumulate कर ले, और संग्रह कर ले, और कुछ जान ले। एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जा रहे हैं, दूसरे गुरु से तीसरे गुरु के पास जा रहे हैं। गुरुओं को खोजते फिर रहे हैं। कहाँ से क्या मिल जाय उसे इकट्ठा कर लें और फिर सब कचरे को इकट्ठा करके सोचेंगे कि अपने पास भी कोई संपत्ति है। कल वह भी एक गुरु हो जायेंगे और उसके पास भी लोग आने लगेंगे और यह Vicious Circle बहुत लम्बा है।

ज्ञान इकट्ठा कर लेने से कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता और बुद्धि सिर्फ इकट्ठा कर सकती है, जान नहीं सकती। **बुद्धि सिर्फ स्मृति बन सकती है, जान नहीं सकती।** इसलिये बुद्धि सिर्फ एक यंत्र है, एक Mechanical device है और बहुत आश्चर्य नहीं है कि अब तो कमप्यूटर बन गया। अब तो बहुत जल्दी आपको अपने भीतर बुद्धि रखने की जरूरत न

होगी। खीसे में कमप्यूटर भी रख सकते हैं। जरूरी नहीं होगा कि भीतर याद करें— चीजों को। एक कमप्यूटर फिट कर देंगे और वह जवाब दे देगा। जब भी सवाल उठे कि आत्मा है ? अपने कमप्यूटर को खीसे से निकालकर पूछ लेना आत्मा है? वह कहेगा, आत्मा है, गीता में ये लिखा है, उपनिषद् में यह लिखा है। वह सब बता देगा। आप प्रसन्न होकर कमप्यूटर को खीसे में रख देना और अपनी यात्रा में निकल जाना।

बुद्धि भी यही कर रही है। बुद्धि कमप्यूटर है, बुद्धि स्मरण का एक उपाय है, जिसमें आपने सब स्मरण कर रखा है। कभी आपने ख्याल किया कि आप बुद्धि नहीं हैं ? आप बुद्धि से बहुत अलग हैं। बहुत बार ऐसा हो जाता है—सुबह आप मुझसे मिलने आये और आप मुझसे पूछते हैं—'पहचाना' ? मैं सोचता हूं—देखा तो है कहीं, कहां देखा होगा ? मैं अपने कमप्यूटर से पूछता हूं, अपनी बुद्धि से पूछता हूं—कहां देखा होगा ? मैं तो अलग हूं, जो इस चक्कर में पड़ गया कि कभी इस आदमी को देखा कि नहीं देखा। अब मैं अपनी कमप्यूटर से, अपनी मशीन से पूछता हूं जल्दी खोजो इस आदमी को, कहीं देखा है ? और वह आदमी कह रहा है, पहचाना नहीं आपने अभी तक मुझे ? अब मैं मुश्किल में पड़ गया। बुद्धि से कहता हूं—जल्दी पहचानो। ये आदमी कहीं देखा है, यह चेहरा ख्याल में आता है। ये बाल, ये शक्ल, ये नाक। बुद्धि कहती है हां कहीं देखा है। मैं खोज करती हूं। वह बुद्धि एक अलग यन्त्र है जो जल्दी से खोजबीन करेगा और आपने बहुत जल्दी की तो घबड़ा जायेंगे यन्त्र के साथ जल्दी नहीं करना चाहिये नहीं तो गड़बड़ी हो जाती है। अगर आपने बहुत जल्दी किया और कहा—जल्दी पहचानिये तो सब गड़बड़ हो जायेगा। अगर आपने थोड़ी सी मुझे फुरसत दी—मैं कहूं बैठिये-बैठिये, बैठिये, जल्दी क्या है ? पहचानता हूं, चाय पी लीजिये। दूसरी बातों में आपको लगाया तब तक अपना कमप्यूटर काम कर ले। क्योंकि उसके पास हजार स्मृतियों का जाल है, उसको खोजना पड़ेगा। लाखों चेहरे हैं, लाखों नाम हैं, उसको जल्दी से खोजना पड़ेगा कि यह कौन आदमी है ? जल्दी-जल्दी शक्ल का मिलान करो। वह यन्त्र काम करेगा। इसलिये अक्सर ऐसा होता कि आपको किसी का नाम न याद आये तो एकदम से नाम याद मत करिये, नहीं तो बड़ी दिक्कत हो जायेगी। थोड़ी देर के लिये कुछ और काम करने लगिये। बुद्धि थोड़ी देर में काम करके जवाब दे देगी कि ये रहा नाम। आप बगीचे में चले जाइये, गढ़ा खोदने लगिये, चाय पीने लगिये, सिगरेट पीने लगिये, कुछ भी करिये। बुद्धि को थोड़ी देर के लिये छोड़ दीजिये ताकि यंत्र जल्दी से अपना काम ठीक तरह पूरा कर ले। उसको वक्त लगेगा, समय लगेगा। मशीन है, मशीन को वक्त लगता है, वह एकदम से कैसे उत्तर दे दे। वह थोड़ी देर में बता देगा कि यह रहा नाम। अक्सर ऐसा होता है कि दिन में हम याद नहीं कर पाते, रात सोते वक्त याद आता है। दिन भर याद नहीं कर पाते, रात नींद में याद आ जाता है। सुबह होने से पता चलता है सब ठीक हो गया।

मैडम क्युरी, जिसको नोबल-प्राइज मिला। जिन सवालों को हल करने में उसे बड़ी प्रसिद्धि मिली वह सवाल उसने सब नींद में हल किये। क्योंकि जब वह सवाल हल करने के लिये बहुत उत्सुक हो जाती तो मशीन गड़बड़ा जाती क्योंकि अति तीव्रता के साथ मशीन मुश्किल में पड़ जाती। आप कहते जल्दी करो। मशीन तो अपनी व्यवस्था से काम कर सकती है। तो रात थके वह सो जाती और जब उसे एक दफे, तरकीब मालूम पड़ गई तो उसने पूरी जिन्दगी उपयोग किया। वह शाम तक थक जाती-सवाल हल करते। सवाल हल न होता तो कागज-कलम बिस्तर के किनारे रख के सो जाती। आपको जानकर हैरानी होगी कि दुनिया के बहुत कठिन सवालों का जवाब आपकी बुद्धि खोज ला सकती है अगर उसको फिट किया गया, अगर उसको पहले से भोजन दे दिया गया है तो वह सवाल खोज लायेगी भोजन ऐसा है जैसे हम बच्चों को सिखाते हैं कि एक से नौ तक की गिनती होती है, एक से दस तक की गिनती होती है। दो और दो चार होते। तीन और तीन का

गुणा करने से नौ होता है। यह सब हम फिट कर देते हैं। फिर कल हम उनसे पूछ लेते हैं कि ३०० और ३०० का गुणा करने से कितना होता है ? और वह फौरन उत्तर निकाल लाता है क्योंकि उसके पास सारा यंत्र तैयार है। कमप्यूटर भर दिया गया है। वह सब उत्तर उसके पास तैयार हैं। वह उत्तर खोज लाता है। बुद्धि एक यंत्र है और आप बुद्धि से बिलकुल अलग हैं।

मेरे एक मित्र ट्रेन से गिर पड़े। सिर को चोट लग गई और सारी स्मृति खो गयी। यंत्र खराब हो गया। वह अब भी ठीक हैं, बाकी हम उनको ठीक नहीं मानते। अब उनको कोई ठीक नहीं मानता। मैं उनके पास गया, बचपन में मेरे साथ पढ़े थे। उनके गांव गया, उनके घर गया। वह मुझे ऐसे देखने लगे जैसे उन्होंने मुझे कभी न देखा हो क्योंकि वह यन्त्र टूट गया जिसमें रेकार्ड है। स्मृति उनकी खराब हो गई। वह मुझे पूछने लगे आप कौन हैं ? मैंने कहा—मुझे पहचाना नहीं ? उन्होंने कहा—मैं किसी को भी नहीं पहचानता।

राहुल सांस्कृत्यायन एक बड़े पंडित थे, महा-पंडित थे। आखिरी-आखिरी वक्त दिमाग से कमप्युटर खराब हो गया। दिल्ली के अस्पताल में बंद थे, बड़े पंडित थे। बड़े पंडितों के कोम्प्युटर कभी भी खराब हो सकते हैं क्योंकि ज्यादा काम लेने पड़ते। इतना काम लिया, इतनी किताबें लिखीं। इतना काम लिया कि दिमाग, जवाब दे गया कमप्युटर। फिर उसकी सीमा के बाहर बात चली गई। आखिर में उनकी हालत यह हो गई थी कि उसे अ, ब, स फिर से सीखने पड़े। क्योंकि सब भूल गया। वह स्मृति जवाब न दे, मशीन ने काम ही बंद कर दिया।

आप इस बात को ठीक से समझ लें कि जो ज्ञान है वह यांत्रिक संग्रह है आपके पास, जिसका उपयोग करना पड़ता है। वह जरूरी है। जिन्दगी के काम के लिये बहुत जरूरी है। अभी मुझे घर वापस लौटना है तो मुझे पूरा पता होना चाहिये कि मैं कहां ठहरा हूं, नहीं तो मैं वापिस कैसे लौट सकूं ! बिलकुल जरूरी है, लेकिन परमात्मा के पास पहुंचने के लिये उस यंत्र की इसलिये जरूरत नहीं है कि परमात्मा का ना तो कोई पता है, ना तो कोई ठिकाना है, ना तो कोई मकान है। हम पहले हैं। कमप्युटर बाद में विकसित हुआ है। वह जो हमारा दिमाग है वह बहुत बाद का विकास है। वह जिन्दगी की जरूरत का विकास है लेकिन हमें पीछे लौटना है, ओरीजनल सोर्स पर लौट जाना है। जहां से हम आये हैं, परमात्मा वहां है। सब छोड़के लौट जाना है। वहां कोई इस यन्त्र की जरूरत नहीं। फिर ये यन्त्र वहां काम भी नहीं कर सकता क्योंकि परमात्मा की हमारी कोई स्मृति नहीं, उससे हमारा कभी मिलन नहीं हुआ। यह यंत्र तो वहीं काम कर सकता है जिससे हमारा मिलना हुआ हो। पहचान हुई हो।

अगर परमात्मा आज आपको मिल जाय और कहे कि भाई जाने पहचाने ? तो आप कहेंगे नहीं पहचाने। आप अपने कमप्युटर से पूछेंगे, पहचाने हुए हैं ? नहीं पहचाने हुए। यह आदमी कौन हैं ? कभी मिला नहीं है। हां, अगर कृष्ण भगवान मिल जायें तो आप पहचान लेंगे क्योंकि वह कमप्युटर में भरे हुए हैं। वह हम मंदिर में देख रहे हैं, बांसुरी बजाते खड़े हैं। अगर वह ऐसी बांसुरी बजाते मिल जायें तो आप पहचान लेंगे। हां, यह आदमी पहचाने मालूम पड़ते हैं। कमप्युटर उत्तर दे देगा। हां यह आदमी ठीक लग रहा है, जरा मोरपंख तिरछा लगाया है, बाकी ठीक है। लेकिन क्राइस्ट को मानने वाला न पहचान पायेगा। वह कहेगा यह कौन आदमी है ? कैसा मोरपंख लगाया है ? ये क्या मामला है ? ये कौन है ? आपको अगर जरथुस्त मिल जायें तो आप नहीं पहचान पायेंगे, लेकिन जरथुस्त को मानने वाला पहचान जायेंगे। नहीं, जिसको आप पहचान लें वह भगवान नहीं है, क्योंकि भगवान की हमारे पास कोई स्मृति ही नहीं है। हमारे कमप्युटर ने तो भगवान जाना ही नहीं है। हमारी स्मृति के यंत्र के पास भगवान की कोई स्मृति नहीं जिसको कि बता दे हां, यह रहा भगवान। अगर आप पहचान लें, रेकग्नाइझ कर लें कि ठीक है, यही है, तो आप समझ लेना यह भगवान नहीं

है। यह आपकी स्मृति का, आपके ज्ञान का ही कुछ मिला जुला खेल है। जिसको आप बिलकुल न पहचान पायें, जिसके सामने खड़े होकर कम्प्यूटर जवाब दे दें कि बिलकुल नहीं पहचान में आता। इसको तो कभी जाना नहीं, ये कौन हैं ? भीतर आप खोजो तो कोई उत्तर न आये, जिसको (Recognize) रेकग्नाइझ न कर सकें आप, पहचान न सकें। तब आप समझना कि किसी दरवाजे में आ गये, कहीं पहुंचे, किसी मंदिर पर, जहां कि अनजान, अज्ञान, अननोन खड़ा है। जिसको हम पहचानते ही नहीं।

भगवान को पहचाना नहीं जा सकता, क्योंकि भगवान को हम जानते नहीं। इसलिए अगर आदमी आपके पास आये और कहे कि मैंने भगवान को पा लिया है तो आप समझना कि उसने उन्हीं भगवान को पा लिया होगा जो उसकी स्मृति पहचान लेती है। इसलिये मैं आपसे कहता हूं—भगवान की पहचान के लिये स्मृति बुद्धि और ज्ञान का कोई यंत्र काम नहीं देगा। वह अज्ञात है। वह सदा अज्ञात है। इसलिये तो रहस्य है। रहस्य और मिस्ट्री का मतलब क्या होता है ? मतलब यह होता है कि जिसको हम न पहचान पायें, जिसके सामने हम खड़े हो जायेंगे—अवाक्, आंखें खुली रह जायेंगी, झपकना मुश्किल हो जायेगा। मन कहेगा नहीं पहचानते, बुद्धि कहेगी नहीं जानते, भाव कहेंगे कोई संबंध नहीं। कर्म कहेगा हमारी कोई सामर्थ्य नहीं। सारा व्यक्तित्व कहेगा, कुछ भी नहीं, हम कुछ जानते नहीं, पहचानते नहीं ये कौन है ? ये क्या है ? ये कैसा है ? जब आपका अहंकार कहेगा अपनी तो कोई गति नहीं तभी आपका सिर झुक जायेगा उन चरणों में। उस अज्ञात के चरणों में आप गिर पड़ेंगे। समर्पण आपके करने से नहीं होगा। आपके सब यंत्र जवाब दे देंगे, आपका कोई यंत्र सहयोगी नहीं होगा। आप अचानक पायेंगे कि चरणों में गिर गये हैं—अज्ञात के। खो गया वह आदमी जो आप थे—यंत्रों का जोड़। और बच गया सिर्फ वही जो सारे यंत्रों के पीछे छिपा है। वही बच गया।

इसलिये जो जान लेता है—परमात्मा को, वह कहेगा नहीं कि मैंने जान लिया, नहीं कहेगा और अगर कहता हो तो उसने जाना नहीं होगा। अगर आप उसे पूछने जायें कि बताओ परमात्मा को जान लिया ? तो हो सकता है वह हंस दे। हो सकता है चुपचाप आपकी तरफ देखे लेकिन यह न कह सकेगा कि हां-जान लिया क्योंकि कहने की स्थिति तो हमारी नहीं। हाँ कौन कहेगा उसके लिये ? कौन सैंक्शन देगा ? कौन सर्टीफिकेट देगा उसके लिये कि हां यही है।

जीसस को गवर्नर, वाइसराय के द्वारा, पायलट के द्वारा सूली दी गई। सूली पर लटकाने के पहले उस पायलट ने आकर जीसस से पूछा कि एक सवाल मुझे भी पूछना है, मरने के पहले जबाब दे दो। जीसस ने कहा, क्या सवाल है ? पायलट ने पूछा, What is truth ? सत्य क्या है ? उस पायलट ने सोचा कि यह आदमी मर रहा है और लोग कहते हैं इसे पता है तो आखिरी वक्त पूछ लेना चाहिये। जीसस चुप रहा। उस आदमी ने कहा, जबाब दो, What is truth ? फिर भी जीसस चुप रहा। शायद उन्होंने आँख से कहा होगा, होठों के भीतर बिना शब्दों के कहा होगा, प्राणों में कहा होगा, लेकिन पायलट तो सिर्फ आदमी की भाषा समझता, उसका कम्प्यूटर जो पहचान ले वही भाषा समझता। उसने कहा, यह आदमी नहीं बोलता, कुछ भी जानता नहीं मालूम पड़ता। सूली दे दो। जीसस ने उत्तर नहीं दिया। हाँ कोई पंडित होता, जीसस का कोई पादरी होता तो वह भी उत्तर दे देता। वह भी कह देता कि बाइबिल में ये लिखा है। सत्य ये है। जीसस ने उत्तर नहीं दिया। और जीसस का पादरी उत्तर दे देता। जरूर कहीं कोई फर्क है। जीसस जानते हैं और पादरी नहीं जानते। सत्य क्या है यह आदमी की सामर्थ्य है कि कह सके ? परम त्मा क्या है यह आदमी की सामर्थ्य है कि पहचान सके ? वहां तो हमारी व्यवस्था गिर जाती है, Quash हो जाती, अराजकता हो जाती है। सब शब्द खो जाते हैं। तो भाषा खो जाती है। वह आदमी भी खो जाता है जो कल तक खोज रहा था।

सन्नाटा और शून्य रह जाता। वहाँ कौन पहचाने ? पहचान भी ले तो कहाँ स्मरण करे ? कहां उत्तर दे ? किसको बताये ? वहाँ सब खो जाता है। नहीं, ज्ञानी वहां नहीं पहुंचते, वहां अज्ञानी पहुंच जाते हैं। अज्ञानी से मेरा मतलब ? अज्ञानी से मेरा मतलब वह है जिसका ज्ञान, जो ज्ञान ही व्यर्थ हो गया ऐसा जान लेता है, जो ज्ञान से भी ऊब जाता है, जो देखता है ज्ञान में भी कुछ सार नहीं। जो ज्ञान कहता है, स्मृति ही सम्हाल ले, ठीक है, काम चलाऊ है। जिन्दगी की जरूरत पूरी करता है लेकिन कहीं ले नहीं जाता ज्ञान कोई मार्ग नहीं है लेकिन ज्ञान से भटकना जरूरी है।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि वे सौभाग्यशाली हैं कि उन्होंने शास्त्र नहीं पढ़े और मैं कहता हूं कि मैं सौभाग्यशाली हूं कि मैंने शास्त्र पढ़े क्योंकि शास्त्र पढ़के मुझे पक्का पता लग गया कि वहां कुछ भी नहीं। बिना पढ़े पक्का पता नहीं लग सकता। शास्त्र पढ़ लेना जरूरी है ताकि पता चल जाये कि कुछ भी नहीं है। ज्ञान को भी खोज लेना जरूरी है ताकि पता चल जाय कि यहां कुछ भी नहीं है, ताकि वह दिशा समाप्त हो जाय। मेरे लिये ज्ञानमार्ग का एक ही उपयोग है, चलना आप जरूर-चल लेना ठीक से ताकि मन में कहीं ये सवाल न रह जाय कि पता नहीं शास्त्र में कुछ होता है। उसे देख लेना ठीक से। वहां कुछ भी नही है। शास्त्र का एक ही उपयोग है। शास्त्र पढ़ने से शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं लेकिन वह व्यर्थ हो जाना बड़ा भारी उपयोग है। क्योंकि तब वह झंझट समाप्त हो जाती है। तब आप ज्ञान के चक्कर में नहीं रहते। तब आप जानने की दिशा में बढ़ते हैं। तब आप ज्ञान की फिक्र छोड़ देते हैं। तब आप एक बात जान लेते हैं कि दूसरे से नहीं हो सकेगा, दूसरा नहीं दे सकेगा। दूसरे से नहीं मिल सकेगा। यह इतनी बड़ी घटना है कि मुझे पता चल जाय कि दूसरे से नहीं मिल सकता है तो मैं Thrown back, अपनी तरफ फेंक दिया गया। अब तैरना है, डूबना है, मरना है, मुझे। अब कुछ रास्ता नहीं। कोई दूसरा नहीं दे सकता और जिस दिन मुझे यह पक्का ख्याल हो जाय कि कोई दूसरा देने वाला नहीं है उस दिन मेरे भीतर इतनी ऊर्जा का जन्म होता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। वह तभी तक रुकी रहती है—जन्म से जब तक मैं दूसरे के कन्धे का हाथ से सहारा लेता हूं।

अगर आपको समुद्र में फेंक दिया हो। कोई बचाने वाला न हो, कोई नाव न हो, कोई सहारा न हो तब क्या करियेगा ? हाथ पैर नहीं तड़फड़ायेंगा ? तैरने का मतलब क्या है ? तैरने का मतलब सिर्फ हाथ-पैर फेंकना है और जब आदमी हाथ पैर फेंकता है तो थोड़ी देर में व्यवस्था से फेंकने लगता है। लेकिन तैरने की एक शर्त जरूरी है कि दूसरे का सहारा नहीं। अगर दूसरे का सहारा हो तो कोई तैरना नहीं सीख सकता। जो तैरना सिखाते हैं वे कुछ भी नहीं सिखाते। वे सिर्फ एक काम करते हैं कि आपको उठाके पानी में फेंक देते हैं और सहारा नहीं देते हैं और खड़े होकर किनारे पर देखते रहते हैं। कोई डूबना नहीं चाहता हाथ-पैर फेंकने लगता है और तैरना सबको मालूम है। एक दफे हाथ-पैर फेंकने की Situation पैदा हो जानी चाहिये। सिर्फ स्थिति आ जानी चाहिये। सब आदमी तैरना जानते हैं। तैरना कोई कला है ? तैरना सबका स्वभाव है। पटक दो पानी में तो सभी लोग हाथ पैर फेंकने लगेंगे। फर्क इतना पड़ता है कि जैसे-जैसे हाथ पैर फेंकते हैं, वैसे-वैसे हाथ पैर ढंग से फेंकने लगते हैं। चार छः दिन बाद व्यवस्था से फेंकने लगते और कोई फर्क नहीं पड़ता।

धर्म सिर्फ उन्हें उपलब्ध होता है जो जीवन के सागर में सब सहारे छोड़ के डूबने की तैयारी करते हैं। मैं गुरु उसको कहता हूं जो आपको फेंक दे और घर की तरफ चला जाय फिर लौट के भी न देखे कि आपका क्या हुआ ? और अगर गुरू आपका हाथ पकड़ के चलाये तो वह गुरू आपका दुश्मन है। वह आपको मार डालेंगे क्योंकि आप कभी तैरना न सीख पायेंगे क्योंकि आप

कभी उधर न फेंके जायेंगे। ज्ञान इतना ही दे अगर कि आपको पानी में फेंक दे और आपको पता चल जाय कि कोई शास्त्र न बचायेगा, कोई ज्ञान न बचायेगा। कुछ भी नहीं हो सकता इससे, तब आपकी जिन्दगी में एक क्रांति शुरू हो जायेगी। इसलिये मैं आपसे कहना चाहता हूं—ज्ञान मार्ग नहीं है। ज्ञान एक भटकन है। अब दिखाई पड़ जाती तो आप उसके बाहर हो जाते। और ऐसा नहीं है कि ज्ञान की भटकन जब दिखाई पड़ जाती तो आपको फिर मीलों पीछे लौटना पड़ता है क्योंकि आप मीलों चले गये। ऐसा नहीं है। जिस दिन आपको दिखाई पड़ता है कि ज्ञान का मामला बेकार है आप तत्क्षण बाहर हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि मैं हजार मील चला आया ज्ञान के रास्ते पर, तब मैंने गीता सीख ली, कुरान सीख लिया, उपनिषद सीख लिया तो अब मुझे भूलना पड़ेगा। नहीं, भूलने का सवाल नहीं, भूलने की जरूरत नहीं। सिर्फ इतना ही जानना काफी है कि ये जो मैंने याद कर लिया है वह ज्ञान नहीं, ये स्मृति है, बात खत्म हो गयी। ये मेरा जानना नहीं है, ये किसी और का जानना है, ये उधार है, बासा है। मेरा नहीं है, मेरी अनुभूति नहीं हैं, मौलिक नहीं है; इतना जान लेना काफी है। कोई गीता को भूलने जरूरत नहीं है।

एक सज्जन मेरे पास आते थे। वह मेरी बातें सुनते थे, एक दिन वह आये और उन्होंने कहा कि आपकी बातें मुझे इतनी जंच गई शास्त्र वगैरह जो मेरे पास थे वह सब को बाँध के कुंए में फेंक आये। मैंने कहा कुंए ने क्या बिगाड़ा था तुम्हारा? अब कुआं दिक्कत में पड़ेगा, जितनी दिक्कत में तुम पड़े थे। अब वह कुएं का क्या होगा? वह कहाँ फेकेगा? उसके पास तो हाथ-पैर भी नहीं। तुमने कुएं में क्यों फेंक दिया? कुएं को क्यों दिक्कत में डाला? उन्होंने कहा आप क्या कहते हैं। मैं तो सोचता था कि आप बड़े खुश होंगे। मैंने कहा अगर तुम शास्त्र को कुएं में फेंक आते हो, इससे भी पता चलता है कि अभी तुम उससे मुक्त नहीं हुए। अभी राग मौजूद है। अभी तुमको पहले ऐसा लगता था कि शास्त्र के ऊपर सिर रखो तो ज्ञान मिलेगा। अब तुमको ऐसा लगता है कि शास्त्र को कुएं में फेंको तो ज्ञान मिलेगा लेकिन मिलेगा शास्त्र ही से। अभी कुएं में फेंको या सिर रखो। शास्त्रों को जला नहीं डालना है। वे बड़ उपयोगी हैं। उनको फेंक नहीं आना कुओं में क्योंकि कुओं का कोई कुसूर ही नहीं। ये आदमी ने पैदा किया है तो आदमी को ही ढोना पड़ेगा। कुएं क्या करेंगे? कुओं का क्या मतलब है? नहीं; न फेंक देना है, न जला देना है। शास्त्र बड़े कीमती हैं और उनकी सबसे बड़ी कीमत यह है कि उनको आप पढ़ेंगे तो आप उनसे मुक्त हो जायेंगे। जानेंगे कि कुछ नहीं मिला। तो शास्त्र पढ़ें ज्ञान की खोज करें लेकिन पूरे वक्त जांच करते रहें कि कुछ मिला, कुछ पाया?—शब्द ही शब्द, शब्द ही शब्द। सत्य कुछ भी नहीं और जब शब्दों का जाल घेर ले और दिखाई पड़ जाय कि सत्य तो कुछ भी नहीं मिला, शब्द ही शब्द मिल गये।

एक छोटी-सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा। एक आदमी था, अद्भुत आदमी था—लारेन्स। वह अरेबिया में बहुत दिन तक रहा। अरब की क्रांति में उसने भाग लिया था और धीरे-धीरे अरब लोगों के साथ उसका इतना प्रेम हुआ कि करीब-करीब वह अरबी हो गया। फिर अपने कुछ अरब मित्रों को लेकर पेरिस दिखाने गया। पेरिस में एक बड़ा मेला भरा हुआ था तो उसने कहा कि चलो तुम्हें पेरिस दिखा आयें। एक बड़ी होटल में ठहरे थे। जाके पेरिस घुमाया, एफिल टावर दिखाया, लुव्रम्युजियम दिखाया, सब बड़ी-बड़ी चीजें दिखायीं लेकिन अरबों को किसी चीज में रस न था। उनको रस एक अजीब चीज में था। जिसकी आप सोच ही नहीं सकते। वह कहते जल्दी करें, जल्दी होटल वापस चलो। मेले में दिखाने ले गया—Exhibition दिखाई। बड़ी-बड़ी चीजें थीं. एफिल टावर दिखाया। वह कहते कि जल्दी वापस चलो और जल्दी से जाके सब के सब जो आठ-दस साथी थे वह सब अपने-अपने बाथरूम के अन्दर हो जाते। इसने कहा कि मामला क्या है? पता चला कि मामला यह था,

उनके लिये चमत्कार की चीज यह थी-टोंटी-नल की। रेगिस्तान में रहने वाले लोग थे उनके लिये इतना बड़ा मिरेकल था यह कि टोंटी खोली और पानी बाहर। वहां तो बाथरूम इतना बड़ा चमत्कार था (क्योंकि अरब में पानी की बड़ी तकलीफ थी) और उनकी समझ में नहीं आता कि होता कैसे ? वह तो दिन में बार-बार बाथरूम में जाके टोंटी खोलके देखते कि पानी गिर रहा है। जिस दिन जाने का वक्त आया, सब वापिस लौटने को थे। कार बाहर आ गयी। सामान रख गया लेकिन सब अरब एकदम गायब हो गये। तो उसने पूछा कि कहां गये ? मैनेजर से पूछा कि सब साथी कहां गये ? अभी तो यहां थे कहीं बाहर तो नहीं निकल गये ? होटल के आसपास दिखवाया, कहीं भटक न जायें, भाषा नहीं जानते, लेकिन वह कहीं न निकले। फिर उसको ख्याल आया कि कहीं वे बाथरूम में न हों वह बाथरूम में गया, अन्दर जाकर देखा तो सब अपने-अपने बाथरूम में नल की टोंटी निकालने की कोशिश करते थे। उसने पूछा तुम क्या कर रहे हो पागलो ? तो उन्होंने कहा, यह हम घर ले जाना चाहते हैं। यह बड़ी अद्भुत है। बस खोलो और पानी। उसने कहा पागलो, टोंटी ले जाने से कुछ भी न होगा क्योंकि टोंटी के पीछे बड़ा जाल है, बड़ा Reservoir है पानी का। उधर से यहां तक तक आयी हुई नालियां पड़ी हैं, उनसे पानी आ रहा है। टोंटी से कोई मतलब नहीं है। और वह बिचारे यही समझते थे—इतनी सी टोंटी। इसको खोलके घर ले चलें, अरब में मजा आ जायेगा। जो भी देखेगा वह भी चमत्कृत हो जायेगा। खोलो टोंटी और पानी निकल आयेगा।

शास्त्र सिर्फ टोंटी है उसके पीछे बड़ा जाल है। शास्त्र की टोंटी से कोई ज्ञान नहीं निकल आयेगा। इसके पीछे बड़ा जाल है। कृष्ण की गीता सिर्फ टोंटी है, पीछे कृष्ण का जाल है, बड़ा Reservoir है। आप गीता को दबाये फिर रहे हैं। आप वही गलती कर रहे हैं वह जो अरब नासमझी से करते थे। शास्त्रों को दबाये फिरने से कुछ भी न होगा। वह सिर्फ टोंटीयां हैं उनसे कुछ भी नहीं निकल सकता। उनके पीछे बड़ा जाल है। उनके पीछे बड़े जाल पर पहुंचना होगा तो आप भी शास्त्र बन जायें। आप जो बोलेंगे वह शास्त्र बन जायेगा लेकिन उस पीछे के Reservoir पर, पीछे जहां परमात्मा का, सत्य का जल स्रोत है वहां पहुंचना पड़ेगा। टोंटी ले जाने से कुछ नहीं होगा। सब अपने घर में रख लो। खोलो टोंटी और ज्ञान की धारा बहने लगेगी। नहीं, टोटियों से कुछ भी नहीं हो सकता है। और प्रश्न रह गये हैं, वह कल बात करूंगा। मेरी बातों को इतनी शांति से सुना उससे अनुग्रहीत हूं।

●●●

एक अभिव्यक्ति

कुछ कहना चाहना
और कह न पाना···
अनभिव्यक्ति की पीड़ा की मधुरिमा !
रोना—रोना—रोना
और आंसू न होना·····
अभावों—असमर्थताओं का आनंद !
नहीं, नहीं·· ···कुछ नहीं·····कुछ नहीं

—स्वामी अगेह भारती

"अन्तर्वीणा" : एक प्रस्तावना

—स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

(भगवान श्री रजनीश के १५० अमृत-पत्रों का संकलन है "अन्तर्वीणा"। शीघ्र ही प्रकाशित हो रही इस पुस्तक के परिचय हेतु प्रस्तुत है यह लेख।

—सम्पादक

जीवन के सत्य को, रहस्य को, स्रोत को, सार्थकता को जिन्होंने भी जाना और जिया है उनका व्यक्तित्व बन जाता है एक संगीत, एक आलोक, एक अमृत।

और फिर ऐसे व्यक्ति के अस्तित्व-मात्र से ही प्रेम की किरणें बिखरती हैं—आनंद के झरने फूटते हैं—दिव्य संगीत की लहरियां फैलती हैं—और समग्र प्राण आह्लाद से नाच उठते हैं।

और यह प्रत्येक व्यक्ति की संभावना है कि उसके जीवन में प्रेम के फूल खिलें—मुक्ति की सुवास उठे—निर्वाण का आलोक उतरे—और प्राणों से एक दिव्य संगीत व पुलक विकीर्ण हो।

लेकिन, क्यों मनुष्य एक संताप, एक पीड़ा, एक उदासी, एक रिक्तता और अर्थहीनता मात्र रह गया है?

क्या कारण है?

कहां है गलती?

क्यों हो गया है ऐसा?

मूल में कारण यह है कि मनुष्य के जीवन से समता खो गयी है, सामन्जस्य खो गया है, संतुलन टूट गया है।

और जीवन है एक वीणा की भांति।

जिसके तार यदि अधिक कसे हों तो भी संगीत नष्ट हो जाता है।

और यदि तार अधिक ढीले हों तो भी संगीत खो जाता है।

चाहिए मध्य का संतुलन।

न तार कसे हों, न तार ढीले हों।

इसी समता में रहस्य है जीवन-संगीत का।

और जो व्यक्ति जीवन में इस समता को—स्वर्ण-मध्य (Golden Mean) को साध लेता है उसका ही जीवन एक कृतार्थता बन पाता है।

और इस 'जीवन-संगीत' को, 'निर्विचार-शून्य' को, 'निर्भाव की समता' को और 'अ-दिशा में ठहराव' को अपने में जन्म देने की कीमिया है—ध्यान में प्रवेश।

ध्यान ही वह द्वार है जो संगीतमय, आलोकमय, आनंदमय अन्तर्जगत में ले जाता है।

अतः यदि जीवन को बनाना हो एक संगीत, एक गीत, एक नृत्य और एक उत्सव तो उतरें ध्यान में।

छलांग लगायें ध्यान में।

डूबें ध्यान में--प्रार्थना में—समर्पण में।

इसी आमंत्रण के साथ।

इसी आह्वान साथ।

इसी पुकार के साथ।

आचार्य श्री की अमृत-लेखनी से उद्भूत हुए हैं प्रस्तुत पत्र।

आचार्य श्री के प्रथम १२० अमृत पत्रों का संकलन है—'क्रांति-बीज'; दूसरे १०० पत्रों का संकलन है—'पथ के प्रदीप', तीसरे १५० पत्रों का संकलन है—'प्रेम के फूल'।

और अब प्रस्तुत है चौथा पत्र संकलन 'अन्तर्वीणा'।

आगामी तीन संकलन होंगे—'ढाई आखर प्रेम का', 'पद घुंघरू बांध' और 'घूंघट के पट खोल'।

प्रस्तुत पत्र साधकों और सत्य के प्यासों को व्यक्तिगत तौर पर लिखे गए हैं।

इसलिए वे आपके अपने भी सिद्ध होंगे।

ये पत्र आपके हृदय को गुदगुदा जावेंगे।

प्राणों की अन्तर्वीणा को छेड़ जाएँगे।

वे आप में भी आनंद और प्रेम की सिहरनें पैदा कर जावेंगे।

इसे पढ़कर आपके भीतर भी बहुत कुछ जग जाएगा।

और आपकी चेतना किसी अन्तर्यात्रा पर निकल पड़ेगी।

आचार्य श्री के पत्रों के संकलन विश्व-साहित्य में ऐतिहासिक (classic) स्थान बना जाएँगे, ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है। इस आश्वासन के साथ ही प्रस्तुत है : आचार्य श्री की —'अन्तर्वीणा'।

—योग चिन्मय के प्रणाम

•••

"ढाई आखर प्रेम का" : एक प्रस्तावना

—स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

(भगवान श्री रजनीश द्वारा लिखे गये १५० अमृत पत्रों का एक संकलन 'ढाई आखर प्रेम का' शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत सामग्री उसकी एक झलक प्रस्तुत करती है।)

—सम्पादक

प्रेम साधना भी है और सिद्धि भी।

प्रेम प्रथम और अंतिम दोनों ही चरण हैं।

प्रेम मुक्ति है।

प्रेम परमात्मा का स्वभाव है।

प्रेम—शांत, सजग व संतुलित व्यक्तित्व की सुगंध है।

प्रेम—स्वस्थ, जाग्रत व मुक्त जीवन-ऊर्जा से निकलने वाला संगीत है।

प्रेम—आनन्द से भर गये प्राणों का नृत्य है।

प्रेम का प्रारंभ है—ध्यान।

और प्रेम की पूर्णता है—समाधि।

इसलिए प्रेम का प्रारंभ तो है, लेकिन अन्त नहीं।

और अनादि—असीम हो गया प्रेम ही प्रार्थना है।

प्रेम के अभाव में जीवन एक पीड़ा है, संताप है, घुटन है।

लेकिन प्रेम के जन्म के साथ ही जीवन बन जाता है मुक्ति—आनन्द—आलोक - अमृत।

लेकिन, हमारे जीवन में प्रेम का कोई झरना नहीं बहता, प्रेम की कोई किरण नहीं दिखती।

कारण क्या है ?

क्योंकि, हम सतत् लदे हुए हैं अतीत के बोझ से और खिंचे-तने हुये हैं भविष्य के स्वप्नों में।

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर प्रेम के आनन्द के, शांति के, मुक्ति के झरनों का स्रोत है। लेकिन, वह अमृत स्रोत दबा हुआ है विचारों के—संस्कारों के पत्थरों से--मूर्च्छा की शिलाओं से।

साथ ही प्रकृतिगत विकास ने मनुष्य को जहां ला खड़ा किया है वहां बुद्धि-विचार-तर्क तो विकसित हो चुका है, लेकिन अब मनुष्य को स्वयं एक छलांग लगानी पड़ेगी—निर्विचार में—अतर्क्य में—रहस्य में।

और जो व्यक्ति निर्विचार जीवन में, अतर्क्य जीवन में, जीवन के विराट रहस्य में छलांग लगा जाता है उसके ऊपर से अहंकार के, मूर्च्छा के, विचारों के, संस्कारों के, यांत्रिकताओं के, अतीत के, भविष्य के सारे पत्थर हट जाते हैं।

और तब प्रेम का सदा से भीतर प्रतीक्षारत् झरना फूट पड़ता है।

और उस झरने के जन्म के साथ ही व्यक्ति पाता है कि वह तो मिटा।

केवल प्रेम का अनन्त सागर ही बचा है।

और वही आनन्द है।

वही परमात्मा है।

वही मुक्ति है।

इस ढाई अक्षर—'प्रेम" में सब समा जाता है।

जीवन की सारी ऊँचाइयां और जीवन की सारी गहराइयां।

जीवन की सारी उपलब्धियां और जीवन का सारा विकास।

जीवन की सारी धन्यता और जीवन की सारी दिव्यता।

लेकिन कैसे मनुष्य उपलब्ध हो प्रेम को ?

कुछ जीवन-सूत्रों की ओर संकेत किया जा सकता है जो प्रेम के जन्म की कीमिया, रहस्य-कुंजियां हैं।

ध्यान की तैयारी—अर्थात प्रसुप्त जीवन ऊर्जा का जागरण और संरक्षण।

ध्यान—अर्थात मौन, विश्राम, साक्षी, सजगता, अमूर्च्छा।

समर्पण—अर्थात सर्व-स्वीकार, तथाता, बहना।

संन्यास—अर्थात अहं-विसर्जन, डूबना—खोना—मिटना और पूर्ण होना।

●

प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य श्री रजनीश के प्रेम- करुणा—व आनन्द से उद्भूत हुये १५० अमृत-पत्रों का संकलन है।

इनमें प्रेम-साधना व प्रेम सिद्धि से संबंधित जीवन-सूत्रों को आचार्य श्री ने अनेकानेक संभाव्य आयामों से आलोकित किया है।

वे खुद ही प्रेम मूर्ति हैं।

प्रेम के सागर हैं।

उनका समग्र व्यक्तित्व प्रतिपल प्रेम अमृत बरसाता रहता है।

उनके परिचय में आने वाले खोजी साधक प्रेम पिपासु इस अतल प्रेम सागर में नहाते हैं—डूबते हैं—खोते हैं—मिटते हैं।

और मुक्त होते हैं।

परमानन्द को उपलब्ध होते हैं।

पिछले प्रकाशित हुये आचार्य श्री के अमृत-पत्रों के ४ संकलन हैं—'क्रांति-बीज' 'पथ के प्रदीप' 'प्रेम के फूल' और 'अन्तर्वीणा'।

इसी पत्र शृंखला में आचार्य श्री द्वारा अनेक साधकों व प्रेमियों को लिखे गये अमृत-पत्रों के आगामी जो तीन संकलन होंगे उनके नाम हैं—'पद घुंघरु बांध' 'घूंघट के पट खोल' और 'जिसने चाखा रस हरि नाम का'।

आप सब के जीवन में भी प्रेम की अमृत वर्षा संभव हो सके इस प्रेरणा व आशा के साथ प्रस्तुत है : 'ढाई आखर प्रेम का।'

स्वामी योग चिन्मय के प्रणाम

एक पत्र : एक ज्योति

भगवान श्री द्वारा स्वामी अमृत सिद्धांत, अहमदाबाद को लिखा गया एक पत्र

प्रिय अमृत सिद्धान्त,

प्रेम। पढ़ो आकाश को—क्योंकि वही शास्त्र है।

सुनो शून्य को—क्योंकि वही अमृत है।

और गये शास्त्र में कि भटके।

और पकड़े शब्द कि डूबे

लिया सहारा मंत्र का कि किया छेद नाव में।

और खोजना मत अमृत को।

क्योंकि उसे ही खोजते तो जन्म-जन्म व्यर्थ ही गंवाये है!

खो जो मृत्यु को——मिलो मृत्यु से।

और अमृत के द्वार खुल जाते हैं।

मृत्यु अमृत का ही द्वार है।

रजनीश के प्रणाम

१९-४-१९७१

प्रश्न साधक के दृष्टि भगवान की

(पिछले ६ वर्षों के क्रम में श्री कमलेश शर्मा, को लिखे गए भगवान श्री के कुछ पत्र)

प्रश्न—१. दर्शन शास्त्र का जीवन सत्य की उपलब्धि में क्या योगदान है ?
प्रश्न—२. व्यक्तित्व के मूल्यांकन का मापदण्ड क्या हो ?
प्रश्न—३. यह जगत् क्या है ?—है भी या नहीं है ?
प्रश्न—४. असत् से मुक्ति कैसे हो ?

मेरे प्रिय,

प्रेम। पत्र पाकर आनंदित हूं। और मेरे प्रति सत्य को इतनी सहजता से खोला है इसलिये अनुगृहीत भी।

● जीवन सत्य कभी भी चिंतन से उपलब्ध नहीं होता है। क्योंकि चिंतन वस्तुतः दूसरों के विचारों की जुगाली है। वह मौलिक नहीं है। समस्या अपनी और समाधान दूसरों का—यही सबसे बड़ी समस्या बन जाती है। समस्या भी अपनी और समाधान भी अपना ही चाहिये। यह समाधान ध्यान से आता है। ध्यान का अर्थ है शून्य जागरूकता (Contentless Consciousness)। जो विचार में पड़ते हैं, वे भटक जाते हैं। इसलिये ही दर्शन-शास्त्र (Philosophy) कोल्हू के बैल की भांति घूमता है लेकिन कहीं पहुंचता नहीं है।

मैं कहता हूं—**विचारों से समाधान**। निश्चय ही अविचार को नहीं कहता हूं। वस्तुतः तो जो विचारों में पड़ा रहता है उसका जीवन ही अविचार का होता है और जो निर्विचार को पा लेता है उसके जीवन में विचार आ जाता है।

● मैं किसी व्यक्तित्व को कभी नहीं आंकता हूं। और न ही आकलन का कोई आधार है। प्रत्येक अद्वितीय (Unique) है। जो जैसा है—जो है—वैसा ही है। तुलना ही वस्तुतः असंभव है। सब तुलनाएं हमारी क्षुद्र बुद्धि से उत्पन्न होती हैं। मूल सत्ता में न कोई नीचे है— न ऊपर—न शुभ है—न अशुभ। स्वयं से अहंकार के जाते ही समस्त तुलनाएं और निर्णय विलीन हो जाते हैं। **अहंकार को छोड़ो और देखो; तब जो दिखाई देता है—वही सत्य है।**

मनुष्य जब स्वयं को सृष्टि से बाहर रख लेता है तो सृष्टि का प्रयोजन क्या है ? आदि प्रश्न पैदा होते हैं। और सृष्टि के बाहर खड़े होकर सृष्टि को देखना भूल है। क्योंकि जो भी है—वह सृष्टि है। उसमें डूबते ही न कोई उद्देश्य है—न प्रयोजन है। वहां तो बस **जीवन** है और जीवन सच्चिदानन्द है। उसके बाहर कुछ भी नहीं है और इसीलिए वह स्वयं ही अपना लक्ष्य है।

● असत् विचारों से छुटकारा नहीं मिलता क्योंकि हम सत् विचारों को बचाना चाहते हैं। यह प्रश्न वैसा ही मूर्खता पूर्ण है जैसे कोई किसी सिक्के के एक पहलू को छोड़ना चाहे और एक को बचाना। **दोनों को जाने दो और तब जो शेष रह जाता है, उसे ही मैंने मोक्ष जाना है।** कभी मिलो तो ही गहरे में बातें हो सकती हैं।

रजनीश के प्रणाम
२०।११।१९६५

प्रश्न—● क्या विचार साम्य से एकात्म बोध (सत्यबोध) का कोई संबंध है ?

मेरे प्रिय,

प्रेम। पत्र मिले हैं। विचारों के पंख बिल्कुल झूठे हैं। वे दिखाई तो पड़ते हैं पंख, लेकिन अंततः पिंजड़ा ही सिद्ध होते हैं। उनसे कभी कोई उड़ नहीं सका। हाँ, उड़ने के सपने ही देखना हो तो बात दूसरी है। सत्य के आकाश में उड़ने की क्षमता तो तभी आती है जब चित्त विचारों के पंख होने के भ्रम से मुक्त हो जाता है। वहाँ सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
३।५।१९६७

प्रश्न—● रस की उपलब्धि का मैं क्या करूं ?

प्रिय कमलेश,

प्रेम। रस को उलीचो—फेंको—बिखेरो चारों ओर।
उसे रखो मत—बांटो।
क्योंकि; बांटना ही उसके बढ़ने का नियम है।
और रोका कि वह मरा।
रसदान की इस अनिवार्यता से ही जन्मी हैं सब कलाएं।
रस ही अभिव्यक्त होने की आतुरता में कला बन जाता है।
वही बनता है गीत।
वही मूर्ति।
वही नृत्य।
वही बनता है बुद्ध।
वही कबीर।
वही कृष्ण।
रस को उलीचो— फेंको—बिखेरो।
उठते बैठते।
सोते जागते।
उसे बांटो।
रोको तो वही जहर हो जाता है।
बाँटो तो वही अमृत है।

रजनीश के प्रणाम
१४–१२–१९७०

प्रश्न—• तुमने मुझे स्वीकारा है—अनुग्रह बोध से भरा हूं। लेकिन तुम हो कौन ?

प्रिय कमलेश,

प्रेम। मैंने नहीं—स्वीकारा है तुम्हें स्वयं प्रभु ने।

अब मैं हूं भी ?

देखो—कहीं भी दिखाई पड़ता हूं ?

पारदर्शी (Transparent) भी हो गया हूं स्वयं को खोकर।

इसलिये, जिसके पास भी आँखें हैं, वह मेरे आर-पार देख सकता है।

और तुम्हारे पास आँखें हैं।

देखो—संकोच छोड़ो—कहीं भी मैं दिखाई पड़ता हूं।

मैं नहीं—अब तो वही है।

और जब मैं कहता हूं मैं—तब वही कहता है।

इसलिये, बहुत बार मेरा मैं विनम्र भी नहीं मालुम पड़ता है।

क्योंकि, वह मेरा है ही नहीं।

और जिसका है, उसके लिये क्या विनम्रता—क्या अहंकार ?

रजनीश के प्रणाम
१५-१२-१९७०

प्रश्न—• आपका होना मेरे लिये एक चुनौती हो गया है ? प्रतिपल, हर जगह।

प्रिय कमलेश,

प्रेम। जीवन चुनौती है ही।

अनंत आयामी (Multidimensional)।

इसलिये ही तो जीवन ठहराव नहीं—गति है।

अंतहीन।

इसलिये जो जीवन को चुनौती की भांति नहीं लेते हैं, वे जीते ही नहीं, बस मरते ही हैं।

पूरे जीवन।

जन्म से मृत्यु तक उनकी बस एक ही गति है—मृत्यु की ओर।

उनकी मंजिल सुनिश्चित है क्योंकि उनका मुकाम मृत्यु है।

जीवन है अनिश्चित।

प्रतिपल नया।

अनायोजित।

अनपेक्षित।

जीवन की भविष्यवाणी नहीं हो सकती है।

जीवन का ज्योतिष नहीं है।

सब ज्योतिष मृत्यु के ही हैं।

इसलिये ही जीवन चुनौती (Challenge) है।

मृत्यु है विश्राम।

जीवन है संघर्ष।

लेकिन, विश्राम भी उन्हीं के लिये है मृत्यु, जिन्होंने जीवन का संघर्ष किया है।

जो जिये ही नहीं उनके लिये मृत्यु भी बस भय के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
जो जीवित हैं, उसके लिये तो जैसे मृत्यु है ही नहीं।
जीवन के संघर्ष से ही मृत्यु का विश्राम रूप अर्जित होता है।
जीवन की कमाई है।
इसलिये, जो मृत्यु को कमा कर मरता है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
जैसे कोई जीसस।
जैसे कोई सुकरात।
कमाओ मृत्यु को————जीवन की सारभूत चुनौती यही है।

रजनीश के प्रणाम
१६-१२-१९७०

प्रश्न—● मोक्ष का पथ कहाँ है ? कैसा है ?

मेरे प्रिय,

प्रेम। एक शिष्य ने केम्बो (Kembo) से पूछा : "सभी बुद्ध पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं और सभी युगों के। लेकिन वह मार्ग कहाँ है और कहाँ से प्रारम्भ होता है ? (Where does that road begin ?)।"

केम्बो ने अपनी छड़ी उठाकर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहा : "यह रहा वह मार्ग। यहीं से वह शुरू होता है। (Here it is)।"

यही शिष्य फिर उमौन (Ummon) के पास गया और वही सवाल उससे भी पूछा।

दोपहर थी और उमौन के हाथ में पंखा था। उसने सभी दिशाओं में पंखा हिलाकर कहा : "वह मार्ग कहाँ नहीं है ? उसका प्रारम्भ कहाँ नहीं है ? (Where it is not ?)।"

और फिर जब किसी ने ममौन (Mamon) से इस घटना का राज पूछा, तो उसने कहा : "इसके पहले कि प्रथम कदम उठे मंजिल आ जाती है और इसके पूर्व कि जिह्वा हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है।" (Before the first step is taken the gool is reached, and before the tongue is moved the speech is finished)

रजनीश के प्रणाम
१४-१-१९७१

प्रश्न—● "जीवन जागृति केन्द्र" क्या करे ?

मेरे प्रिय,

प्रेम। प्रतिदिन रात्रि में घेर लेने वाली निद्रा ही अकेली निद्रा नहीं है।
और भी निद्रायें हैं—मानसिक भी, आध्यात्मिक भी।
उन्हें तोड़ना है।
क्योंकि, सोया मनुष्य—मनुष्य ही नहीं है।
वरन् वह पशु से भी बदतर हो जाता है।
जबकि जागते ही वह स्वयं ही परमात्मा की गरिमा बन जाता है।
'जीवन जागृति केन्द्र' सोये कानों में 'भोर होने की खबर' पहुंचाने में सफल होगा, ऐसी मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं।

रजनीश के प्रणाम
२३-१-१९७१

ध्यानातीत की ध्यानावली

ध्यान; चित्त का परिपूर्ण मौन।

ध्यान जीवन को भुलाने की कोशिश नहीं, ध्यान स्वयं के प्रति जाग जाना है।

ध्यान चित्त की समस्त क्रिया के प्रति जागरुक होना—चित्त के समस्त पर्दों के सामने निष्पक्ष भाव से खड़ा रह जाना—जैसे ही निर्णय लिया ध्यान समाप्त।

ध्यान की स्थिति बनते ही असार झड़ जाता है।

ध्यान पूर्वक न हो सके—समझना वह करने योग्य नहीं है।

ध्यान पूर्वक जो हो सके वही मेरी दृष्टि में पुण्य है।

ध्यान है तीसरा आदमी बन जाना जो एक है भीतर—देखने वाला यह तीसरा निरखना चाहिये।

ध्यान के अतिरिक्त अज्ञात कभी प्रवेश नहीं करेगा।

ध्यान का मूल सूत्र यही है "तैरो मत बहो।"

ध्यान है विषय-वस्तु-रहितता। ध्यान है अक्रिया।

ध्यान है मन की मृत्यु।

ध्यान नदी है, समाधि, सागर है।

ध्यान के संबंध में सोचें मत—चखें।

ध्यान में जागें—डूबें। ध्यान मनातीत है।

ध्यान है जागरण—सजगता—साक्षीभाव।

ध्यान से बाहर निकल जाना ही समाधि है।

ध्यान का कांटा स्थिर हुआ कि तराजू-पलड़े और कांटा सब तिरोहित हो जाते हैं।

ध्यान विस्मरण नहीं, रुपांतरण है।

ध्यान के लिये काम और राम दोनों से ऊपर उठना आवश्यक है।

ध्यान से ऊपर उठे कि समाधि शुरू हुई और समाधि में न स्व है, न पर है, वरन् बस है।

ध्यान की पूर्णता में सब खो जाता और फिर तो बस जो होना हो, हो जाता है।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है या अपने को खोने की—विलीन होने की क्रिया है—उसमें जो हमारा मूल स्रोत है। ध्यान की पहली सीढ़ी है, फ्लोटींग।

ध्यान का अर्थ है, समर्पण-टोटल सरेन्डर।

ध्यान में हमें इतना ही करना है, उसे हम बाधा न दें। और वह जो करना चाहता है उसे करने की सुविधा दें।

ध्यान की गहरी से गहरी बात है तथाता—परिपूर्ण स्वीकृति का भाव—कोई विरोध नहीं।

ध्यान में शून्य घटता है तब परमात्मा के पदचाप सुनाई पड़ते हैं।

ध्यान भी व्यर्थ हो जाता है उस दिन, जिस दिन अस्तित्व के साथ एक हो जाते हैं। ध्यान मैं करता नहीं हूं, ध्यान मैं हूं।

संकलन—मां योग मीरा
जूनागढ़

जीवन भी कथा है

—ब्रह्मदत्त

इसके पहले कि मैं माताजी की मृत्यु की घटना बताऊँ, यह जरूरी है कि मैं कुछ अपने संबंध में कहूं। विशेषत: इस बारे में कि मैं परमपूज्य आचार्य श्री रजनीश के सम्पर्क में कैसे आया।

आचार्य श्री रजनीश के कुछ फुटकर लेख अन्य-तत्र पत्र-पत्रिकाओं में कई बार मैंने पढ़े थे। मैंने न तो उन्हें पहले कभी देखा था और न कोई प्रवचन ही उनका सुना था। पर ऐसा सुन रखा था कि 'धर्म' पर वे बहुत अच्छा बोलते हैं और गुरु प्रथा के उत्कट विरोधी हैं। .....मैंने प्रथम बार उन्हें अप्रैल ७० में क्रास मैदान, बम्बई में देखा और सुना। उनकी अत्यंत आकर्षक वाणी और चेहरे पर बहती करुणा की गंगा को देखकर अत्यंत प्रभावित हुआ। परन्तु सबसे अधिक प्रभावित हुआ था उनके एक छोटेसे व्यवहार से।

दूसरा या तीसरा दिन रहा होगा प्रवचन का। मैं अपने मित्र के साथ पंडाल के बाहर सड़क पर खड़ा था। आचार्य श्री पहली बार लेट थे। दरअसल उनकी गाड़ी ट्रेफिक-जाम में फँस गयी थी। हम दोनों मित्र बातें कर रहे थे कि एकाएक देखा कि दायीं ओर से आचार्य श्री एकदम अकेले मंद-मंद मुस्कराते चले आ रहे हैं। किसी का ध्यान उन पर नहीं था। मैंने देखा और मित्र से बताया। हम दोनों अत्यंत उत्सुकता से उन्हें देखने लगे। जब वे निकट आये, मैंने अनजाने में ही दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। और मैं आश्चर्य से भर गया जब मैंने देखा कि वे रुक गये। और स्वयं भी हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे। न जाने क्यों मैं बुरी तरह शर्मा गया। मित्र की ओर देखा तो वह भी उसी दशा में था। उसके नमस्कार का भी प्रत्युत्तर मिला था। मैं बड़ा हैरान हुआ। क्योंकि, मैं बहुत साधु-सन्तों, गुरुओं को निकट से देख चुका था। यह तो मेरे लिए एक अद्भुत अनुभव था। इतनी निरहंकारिता कम से कम मैंने और किसी धार्मिक आदमी में नहीं पायी थी। हो सकता है मेरे अनुभव का दायरा कम हो पर जितना भी है, वहां ऐसा विनम्र व्यक्ति नहीं था।

मैं आकर्षित हुआ। पर उनसे मिल सकने की कोई बात नहीं हुई। कोई जरूरत भी नहीं थी। योग साधना में मेरी वर्षों से रुचि रही है। काफी कुछ पढ़ा है और सत्संग के अच्छे अच्छे मौके भी मिले हैं। एक परमपूज्य गुरुदेव द्वारा उपदेश प्राप्त कर अनहद, खेचरी और शब्द आदि के रहस्यों का भी परिचय पाया है। मैंने कभी नहीं सोचा था कि आचार्य रजनीश से कोई सम्पर्क करना है। सीधी सी भाषा में कहूं तो मैं उनमें कोई खास 'इन्टरेस्टेड' नहीं था। पर तब क्या जानता था कि मैं रहस्य-जगत् में एक दिन प्रवेश करूँगा। .....

उसके बाद आचार्य श्री को मैंने उनके उस समय के निवास-स्थान सी. सी. आई. चैम्बर्स में कई दिनों तक सुना। वहां कुंडलिनी योग पर चर्चा हुई और जानकर हैरान रह गया कि आचार्य श्री ऐसे-ऐसे रहस्य खोले दे रहे हैं जो उस समय के पहले किसी महापुरुष ने सार्वजनिक रूप से नहीं कहे थे। वहां भी मैं उनके निकट नहीं गया। एक साधारण दर्शक की भांति ही उन सभाओं में उपस्थित होता रहा।

अब मैं यहां पर आचार्य रजनीश की साधना पद्धति पर थोड़ा बता देना उपयुक्त समझता हूं। आचार्य

रजनीश एक अद्भुत व्यक्ति तो हैं ही किन्तु मेरी दृष्टि में वे इस पृथ्वी पर इस समय एकमात्र 'जीवंत' व्यक्ति हैं। जीवंत कई अर्थों में किन्तु मेरा तात्पर्य सिर्फ इस अर्थ में कि वे नित नये प्रयोगों में संलग्न हैं। आचार्य जी जैसा साहसी, निर्भीक व्यक्ति कदाचित् ही कोई हो धर्म के क्षेत्र में। प्रयोगों के तो वे देवता ही हैं। योग में उनका नव नतम और अन्यतम प्रयोग है, श्वास की तीव्र गति। उनके प्रेमियों ने साधना की इस पद्धति को 'जेट-स्पीड साधना' नाम दे रक्खा है। शायद आचार्य रजनीश के पहले किसी ने नहीं कहा कि श्वास तीव्र गति से लें और छोड़ें। चक्र, पूरक, कुंभक अथवा इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी पर चर्चायें तो बहुत हैं और जोर से सांस लेने को भी बहुतों ने कहा है किन्तु आचार्य श्री ही प्रथम व्यक्ति हैं जो कहते हैं तीव्रता से श्वास छोड़ो भी।

मैं जो साधना करता था वह प्राचीन ढंग की ही थी किन्तु जिन दिनों क्रास मैदान में आचार्य श्री के प्रवचन हो रहे थे उन्हीं दिनों एक गुजराती मासिक में मैंने आचार्य श्री की निन्दा का एक लेख पढ़ा। खूब जी खोलकर आचार्य जी को उसमें धिक्कारा और आक्षेप लगाये गये थे। साधनापद्धति को तो खूब आड़े हाथों लिया था। आचार्य जी हिप्नोटाइज करते हैं ऐसा आरोप भी था।

मैंने वह लेख पढ़कर तय किया की मैं भी उस तरह की साधना करके देखूंगा। हिप्नोटिज्म का भय नहीं था क्योंकि आचार्य जी को मैं जानता था और साधना अकेले ही करना था। उस रात बिस्तर पर ही बैठकर मैंने अत्यंत तेज गति से श्वास लेनी और छोड़नी शुरू की। पता नहीं पांच या दस मिनिट मैंने साधना की और एक अत्यंत रोमांचक आह्लाद एवं विचित्र अनुभूति में प्रविष्ट हो गया। अनुभूति मैं यहां वर्णन नहीं करना चाहूंगा क्योंकि अगर कोई नया साधक इस अनुभूति को प्राप्त करने की इच्छा रखता हो तो वह स्वयं करे और देखे। बता देने से आश्चर्य बोध नष्ट हो जायेगा और शायद मन भी प्रोजेक्ट कर ले वह स्थिति।

तो मैंने पाया कि वह हिप्नोटिज्म नहीं है। बल्कि वह स्थिति है जिसका वर्णन योग पुस्तकों, शास्त्रों में हुआ है। फर्क सिर्फ इतना है कि यह स्थिति आने में कई वर्ष लग सकते हैं यदि प्राचीन पद्धति से की जाये और आचार्य श्री की पद्धति से यह (कम से कम मुझे तो) दस मिनिट में उपलब्ध हो जाती है। मैं अत्यंत रोमांचित हो गया। कुछ ही दिनों में ध्यान सदैव श्वास पर रहने लगा। सायंकाल को अपने आप गति पकड़ लेता। रात्रि को नींद में भी स्वतः आरंभ हो जाती साधना। मेरे बड़े भाई जो उन दिनों पूरी रात जागते थे उनका भी इस बात पर ख्याल गया और उन्होंने बताया कि मेरी श्वास बड़े जोरों से और विचित्र लय से चलती है रात को।

मगर मैं बेखबर था अपनी साधना से। बिना परिणाम की चिंता किये और बिना किसी इच्छा के मैं साधना में उतरता चला जा रहा था। फिर एक दिन एक घटना घट गयी। आठ अगस्त १९७० की रात को मैं अपनी सांस से अलग हो गया।...हां, यह सब झूठ, गप्प लगता है पर यह एक उतना ही सत्य है जितना की सूर्य का होना।.....हुआ यह कि मेरी नींद खुल गयी। मेरी बगल में मेरी श्वांस चल रही थी और मैं आँखें फाड़े इधर उधर देख रहा था। मैं उस दिन गलियारे में अकेले सोया था। कहीं कोई न था। मैंने अपनी नाक पर हाथ लगाया। श्वास नहीं थी। पहले तो मैं घबड़ाया किन्तु फिर शांत, फिर स्थिर हो बैठ गया। कुछ मिनिटों में श्वास की आवाज बन्द हो गयी और लगभग आधे घंटे बाद मेरी श्वास नार्मल से लौटी।

यह सब बड़ा सुखद और आश्चर्य जनक था। और यह घटना फिर कई रातों को घटित हुई। मैं हैरान और कुछ परेशान हो गया। मैंने आचार्य जी से एकान्त में भेंट का समय मांगा। ९ सितंबर को उनसे सी. सी. आई. चैम्बर्स में सुबह साढ़े नौ बजे मिला। फिर एक अद्भुत घटना घटित हुई। कमरे में मैंने ज्योंही प्रवेश किया उन्होंने दोनों हाथ बढ़ा-

कर मुझे अपने निकट बैठने का इशारा किया किन्तु न जाने मुझे क्या हुआ कि मैं उनके चरणों में गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा। हिचकियां बंध गयी। बड़ी देर तक कंठ से कुछ न निकला और वे बार-बार अत्यंत प्यार से कहते रहे—कहिये ! कहिये ! कुछ पूछना है ?

मेरी साधना के बारे में जानकर वे अत्यंत प्रसन्न हुये और सब कुछ बहुत अच्छा हो रहा है कहकर मुझे प्रोत्साहित किया। साधना में कोई भी दिक्कत, कोई भी कठिनाई आये तो किसी भी वक्त आने के लिये कहा। और यह सब बातचीत हुई परन्तु उन्होने एक बार भी मेरा नाम तक न पूछा। ठीक ही है। क्या सागर अपने भीतर गिरने वाली नदियों के नाम पूछता होगा ?

मैं वहाँ से चला आया। इतनी शांति मैंने जीवन में कभी अनुभव नहीं की थी। उनके सन्मुख साधना करने की मेरी उत्कट लालसा थी। और फिर यह अवसर मिला २५ सितंबर को, मनाली में। मनाली में ५ अक्तूबर तक साधना शिविर लगा था। भगवान कृष्ण पर उनकी बहु-आकांक्षित, बहुप्रतीक्षित चर्चा भी वहीं हुई थी। पर मुझे उस सब पर कुछ नहीं कहना है यहां।···सिर्फ इतना कहना है कि मनाली में मैंने अपना परिचय स्वयं दिया उन्हें।

मनाली से आने के बाद घर में मैंने साधना जारी रक्खी। मैं एक रहस्यलोक में प्रवेश कर रहा था और भीतर आनन्द के झरने फूट चले थे। आचार्य जी की साधना पद्धति चार चरणों में पूरी होती है। मनाली से सीखकर लौटा था। प्रथम चरण तेज श्वास। द्वितीय चरण निर्जरा का जिसमें हास, रुदन, चिल्लाना और नाच क्रिया संपन्न होती है। तृतीय चरण में प्रश्न···मैं कौन हूं ? और चौथे में विश्रांति। प्रतीक्षा। चालीस मिनट की यह ध्यान-क्रिया बड़ी अद्भुत, आकर्षक और बहुतों के लिये भयानक तथा लज्जाजनक भी है।— मैं शर्म को मनाली में ही फेंक आया था। घर पर साधना तीव्र गति से शुरू की। घर के बच्चे आकर्षित हुए। बड़े भी। पर बड़ों में संकोच था। बच्चे निर्द्वन्द, मुक्त और बनावट से दूर। कुछ बच्चों ने साधना में साथ दिया। मैंने उन्हें सिखाना और कराना चालू कर दिया।

तीन-चार दिनों में बच्चों ने आशातीत प्रगति कर ली साधना मे और कुछ बच्चे विचित्र अनुभूतियों से गुजरे। कई कारणों से उन दिनों में आचार्य श्री के पास कई बार गया। अकेले भी और बच्चों को लेकर भी। मेरे एक डाक्टर मित्र हैं। उन्हें भी एक दो बार साधना करा दी थी और एक दिन वे भी एक घटना से गुजरे। उन्हें लेकर भी मैं आचार्यश्री के चरणों में २३ अक्तूबर ७० को गया और उस दिन...।

× × ×

उपरोक्त सब बातें लिखने का कारण है। यह जरूरी है कि सब लोग अच्छी तरह जान जायें कि मैं सिर्फ साधक हूं, सिद्ध नहीं। साधक भी ऐसा जो अभी-अभी साधना पथ पर उतरा है उतरा है कहना भी अतिशयोक्ति होगी, दर असल अभी केवल कदम उठाया है। यह कहना बड़ा आवश्यक हो गया है क्योंकि मां की मृत्यु के बाद सगे-सम्बन्धियों और परिचतों-मित्रों में काफी चर्चायें और काना-फूसियां हुई हैं। आचार्य रजनीश का मेरे साथ संबंध और इस घटना में उनका "रोल" कितना है यह बताकर ही मृत्यु की उस अद्भुत घटना को कुछ जाना, समझा जा सकता है, अन्यथा उस घटना को लोग अपने-अपने ढंग से ही प्रस्तुत करके व्यर्थ की शंकायें उत्पन्न करते रहेंगे।

अब मैं माताजी के बारे में बता दूं कि वे कई वर्षों से उच्च रक्तचाप की मरीज थीं। डायबीटिज की शिकार भी रह चुकी थीं। दो बार हार्निया का आपरेशन हुआ था। शरीर बहुत भारी था किन्तु अशक्त बहुत थीं। न्यूराइटिस, नेफ्राइटिस, सिस्टाइटिस, यूरेमिया शरीर बीमारियों का लैंडिग-प्लेस हो गया था।.....

आर्थ्राइटिस के बड़े-बड़े डाक्टरों से इलाज हुआ था। पैरों से वे बीच-बीच में लाचार हो जातीं किन्तु बम्बई के इन अद्‌भुत ओर्थोपेडिक विशेषज्ञों ने उन्हें कई बार दवाइयों और इंजेक्शनों के बल पर चलने फिरने के काबिल बनाया। पर धीरे-धीरे वे आत्म-विश्वास खोती चली जा रही थीं। डाक्टरों का लगातार यह कहना था कि इस रोग में मरीज को स्वयं सहयोग करना चाहिये और व्यायाम आदि से ही इस बीमारी पर काबू पाया जा सकता है। मगर उनका आत्म-विश्वास क्षीण होता गया और साथ ही वे चिड़चिड़े स्वभाव की होती चली गयीं। मसाज करने के लिये जो आता था उससे भी वे झगड़ती रहतीं। डाक्टरों से प्रार्थना तो करतीं किन्तु दवाइयां उनकी बेकार हैं कहकर उन लोगों से भी अपमानजनक भाषा में कई बार बोल उठतीं। उनका यह हमेशा कहना था कि कुछ फायदा नहीं होता। ये सब बेकार पैसा ले जाते हैं।

माताजी का हम दोनों भाइयों पर अनुपम स्नेह था और उन्हें इस बात का बड़ा अभिमान था कि दो-दो हाथी जैसे बहादुर बेटे हैं उनके (हम दोनों भाई साधारण डील डौल के ही हैं पर उनकी दृष्टि में हम हाथी से कम ताकतवर कभी नहीं ठहरे!)। उन्हें किस बात का डर है? शायद यह असीम विश्वास और प्यार ने उन्हें पंगु बनाता चला गया। मेरे बड़े भाई डील डौल में जरूर कद्‌दावर हैं—किन्तु दिल से एकदम मोम। माँ पर उनकी श्रद्धा अपरिमित थी। था तो मैं पेंट-पोंछना किन्तु मैं हमेशा से औरतों में बोर होता रहा हूं फिर चाहे वह मेरी माँ हो या पत्नी या कोई और। पता नहीं क्यों मैं औरतों में उठ बैठ ही नहीं सकता, बात करने की कौन कहे। मैं प्रायः मां से दूर ही रहता रहा हूं। किन्तु भाई साहब को जब चान्स मिलता वे माँ की गोद में पड़े रहते। मैं इस बात पर उनसे नाराज हो जाता। वे मेरे बड़े भाई हैं किन्तु दो वर्ष का ही फर्क है हमारी उम्र में और चुनाचे कि घर में मेरी तूती बोलती रही है, वे भी प्रायः चुपचाप मुझे सहन कर जाते हैं। मैं उनसे लड़ जाता मां के लिये। मैं कहता इतना प्यार न करो, इतनी सेवा न करो, ये पंगु हो जायेंगी। पर वे न बोलते और अम्मा आँखें तरेर कर कहतीं—चल--चल! बड़ा आया सिखाने वाला। खुद नहीं करता सेवा और दूसरे को भी मना करता है। ठहर छोटे, अंतिम समय सब तुझको ही करना पड़ेगा। नहीं रुलाया तुझे तो कहना।

मैं चेहरे पर भयंकर क्रोध लाता और कहता—सबकी बात छोड़ो अम्मा। मैं अंतिम समय में पानी तक मुँह में नहीं डालूंगा।

—पानी तेरे ही हाथ से लूंगी, हरामखोर। वे चिड़चिड़ाकर बोलतीं, और मैं हंसता हुआ घर से भाग जाता।

१९६७-६८ में वे हम लोगों का हाथ पकड़कर चल सकती थीं, किन्तु मार्च १९६९ में वे पलंग से जा लगीं। तब मैं कलकत्ता गया हुआ था।

बम्बई आया तो माताजी को बिस्तर पर पाया। वे घर में अकेले चलने का प्रयत्न करते हुए गिर गयीं थीं। भारी शरीर। घर के सभी बच्चे और स्त्रियाँ मिलकर भी उन्हें उठा नहीं पाये थे। भाई के आने पर ही किसी तरह उन्हें उठाकर पलंग पर डाला गया था।

उसके बाद वे नहीं उठीं फिर। पलंग ही अब उनका संसार हो गया। स्थिति दिन पर दिन दयनीय होती चली गयी किन्तु उन्हें अपने हाथी जैसे बच्चों पर बड़ा अभिमान रहा और अंत तक किसी के आगे उन्होंने झुकना स्वीकार नहीं किया। अब डाक्टरों ने साफ साफ जवाब दे दिया कि जब तक चलता है, चलता है। कुछ नहीं किया जा सकता। हॉस्पीटल में छोड़ना हो तो छोड़ दो।

पर अस्पताल में हाथी जैसे बेटे कहां होंगे? कौन इतने भारी शरीर को हिला-डुला, उठा पायेगा?

प्रातः बिस्तर गीला हो जाता। इतनी शीघ्रता से उन्हें पेशाब हो जाता कि वह मुंह से चिल्लातीं–पाट। और जब तक कोई पाट लेकर दौड़ता, हो जाता। उन्हें साफ सफाई बेहद पसंद थी। यहां हम लोग फौरन कर डालते थे, वहां क्या होगा? अस्पताल में क्या होता है यह हमसे छिपा न था। मेरा तो बहुत कटु अनुभव रहा है इस मामले में। डाक्टरों से यह पूछने पर कि अगर अस्पताल जाने से कोई लाभ हो तो ले जायें पर उन लोगों ने नकारात्मक उत्तर दिया। एक दो मित्र डाक्टर हैं। उन लोगों ने कहा कि अस्पताल सिर्फ इसलिए कह रहे हैं कि तुम लोगों को आराम रहेगा। यह घर छोटा है और मेम्बर अधिक हैं ऐसे में माताजी की अस्वस्थता से परिवार परेशान होगा और कहा नहीं जा सकता कब तक।

यह तो सरासर माताजी को घर से निकाल फेंकने वाली बात थी। सबों ने अस्पताल में उन्हें छोड़ने में तीव्र अस्वीकृति बतायी।.....

अब जीवन की भयंकरता का एक लंबा सिलसिला शुरू हुआ।

आरंभिक दिनों में छोटे बच्चों से लेकर पिता जी तक सभी उनकी प्रत्येक इच्छा को अत्यंत तत्परता से पूर्ण करते रहे हालांकि तब इच्छाएँ अल्प थीं। पर जैसे-जैसे पलंग पर पड़ी जिंदगी सायंकाल की परछाई के समान लंबी होती चली गयी लोगों का उत्साह शीतकाल में नदी स्नान की तरह मंद होता चला गया। धीरे-धीरे प्यार कर्त्तव्य बन गया और फिर कर्त्तव्य भार हो गया। भार या निर्भार, प्रसन्नता या अप्रसन्नता से सब उठाये चले जा रहे थे। किसी बात की अभी भी कमी नहीं की गयी थी। इच्छाएँ उसी तत्परता से पूर्ण की जातीं, सेवा होती, सुख आराम देने का प्रयत्न होता पर अब उत्साह का गुलिस्तान जीवन के सूखे रेगिस्तान में दूर-दूर तक दिखायी नहीं पड़ रहा था।

एकाएक माताजी ने भी जैसे अपनी नियति जान ली थी। उनकी आँखों में निरीहता और वाणी में दयनीयता प्रगट होने लगी। अच्छा नहीं लगता था। जी मसोस उठता। अपनी अवशता से खिन्न हो जाता और ईश्वर की क्रूरता से क्रोधित। याद आता वह दिन जब उनका पहला आपरेशन हुआ था। तब मैं १४–१५ साल का रहा होऊंगा। पिताजी व्यापार में बहुत बड़ी हानि उठाये घर में बीमार पड़े थे। हम लोग माताजी को म्युनिसिपल अस्पताल ले गये थे। बच्चे थे। अस्पताल के डाक्टरों ने यह भी नहीं बताया कि क्या बीमारी है। भाई के हस्ताक्षर लेकर पेट का आपरेशन कर डाला था। गरीबी का वह अत्यंत कटु अनुभव था। तब आपरेशन की उस रात को अस्पताल के दरवाजे पर खड़े होकर मैंने परमपिता को न जाने कितना कोसा होगा। उस रात यही लगा था मां अगर गयीं तो इसका सारा दोष भगवान पर और उसकी दी हुई गरीबी पर होगा।.....

अब ऐसी बात नहीं थी। पिता का संकल्प और भाई के श्रम ने व्यापार को थोड़ा व्यवस्थित ढंग से कर रक्खा था। अमीर नहीं थे परन्तु असमर्थता भी नहीं थी। व्यय कर सकते थे, कर रहे थे किन्तु अब कोई परिणाम नहीं था। ईश्वर की कैसी विचित्र लीला है यह।.....

१९६९ के खत्म होते-होते सब कुछ अस्त-व्यस्त होने लगा। माताजी के दोनों पैर टेढ़े हो गये। एक हाथ भी जाता रहा और मस्तिष्क भी गंवाने लगीं। घर में बीमारियों की बाढ़ आ गयी। कोई न कोई बच्चा वा बड़ा सदा बीमार रहने लगा। पिताजी हृदय रोगी थे ही, दो बार अस्पताल यात्रा कर आये। मां की सतत सेवा में रहने का संकल्प लेकर भाई भी धंधा व्यापार छोड़कर घर बैठ गये। मार्च १९६९ से अक्टूबर १९७० तक वे लगातार रात्रि जागरण करते रहे। कहां उनकी कुंभकर्णी नींद प्रसिद्ध थी और कहां अब चौबीस घंटों में मुश्किल से दिन में तीन चार घंटे की

नींद । दो कमरों का घर है हमारा। पूरा परिवार एक अजीब से टेन्शन में रहने लगा । मैं स्वयं एक बार हाई ब्लड-प्रेशर का शिकार हुआ।

माताजी की फरमाइशें अब बढ़ गयीं। थीं छोटी छोटी किन्तु तीव्रता से पूर्ण न होने पर चिल्लाने लगतीं। पूरे परिवार के लोगों को कोसतीं। हर बात की उन्हें अति शीघ्रता रहती। सुबह नहलाने धुलाने के बाद पलंग पर लिटाया जाता वे चिल्लातीं—(धीरे बोलना भूल गयीं थी वह) चाय लाओ ! पानी लाओ ! गोली लाओ। नोवलजीन की गोली उन्हें चाहिये थी । चाय खत्म करती और फौरन कहतीं—छोटी, कुछ खाने को दे जाओ। जरा-सी भाजी दे जाओ।.....कुछ नहीं है तो जरा सा नमक दे जाओ ! आफत कर देतीं। छोटे छोटे बच्चे तक उनकी सेवा करते थे पर उन्हें एक क्षण अब एक वर्ष सा लगने लगा था। पूरा घर उन्हें शत्रु लगने लगा था। यहां तक की भाई साहब को भी बड़ी बड़ी बातें बोल लेतीं थीं। हां मस्तिष्क शांत रहने पर रोतीं। सबों से माफी मांगतीं।

उन्हीं दिनों वे पलंग पर पड़े-पड़े ऐसे गीत गाने लगीं थीं जिनका संबंध मायके से या माता-पिता से होता था। प्रायः वे अपने पिता की याद कर रोतीं। हम लोगों पर एक गहरी उदासी और निराशा छा जाती। मृत्यु का स्पष्ट आभास चौबीस घन्टे रहने लगा। किन्तु जीवन पहाड़ हो गया था । वे स्वयं कभी-कभी अत्यंत व्याकुलता से पूछतीं—बड़े, क्या कभी यह सुनाई पड़ेगा कि महदेई मर गयी ? हम लोग मजाक में उड़ा देते—पर अम्मा जब महदेई मरेंगी तो महदेई सुनने थोड़े ही आयेंगी।

१९७० के आरंभ में उनके हाथ पैर सूजने लगे थे । पेशाब कभी बन्द हो जाता, कम हो जाता या फिर कभी लगातार होता और बहुत होता । दिन भर बिस्तर बदलते रहना पड़ता।

सितम्बर तक यूरेमिया के चिह्न प्रगट होने लगे। पिंडली में त्वचा फटी, खून निकला और सूखकर रुक गया । हाथ में भी एक दो जगह ऐसा हुआ। मेरे डाक्टर मित्र बहुत परेशान हुये । उन्होंने मुझसे कहा और मैं भीतर ही भीतर तड़प कर रह गया— अब और कितना भोगेंगी ?.....

सितम्बर के अंतिम सप्ताह में मैं मनाली चला गया था। वहां से आठ अक्टूबर को वापस आया तो पता लगा कि पहली तारीख को उनकी दशा गंभीर हो गयी थी। डाक्टरों ने बहुत प्रयास किये । किसी तरह होश में वापस आयीं । मगर मुझे वे उसी तरह मिलीं जैसा छोड़ गया था। निकट बुलाकर मेरे गाल का चुंबन लिया और बड़ी प्रसन्नता से बोलीं–मेरा छोटू आ गया, मेरा छोटू आ गया। मैं मनाली से आचार्य श्री का एक चित्र उनके हस्ताक्षर युक्त लाया था, अटैची से निकालकर दिखाया उन्हें । चित्र दाहिने हाथ से (बांया हाथ नाकाम हो चुका था) पकड़कर उन्होंने अपने माथे पर रख लिया और फूटकर रो पड़ीं—मुझे कब उठाओगे भगवान ?

यहाँ मैं बता दूं कि उन्होंने आचार्य श्री के कभी दर्शन नहीं किए थे। वे उनके बारे में कुछ भी नहीं जानती थीं। आचार्य श्री की चर्चा बहुत ही कम हुई थी तब तक घर में। और चित्र भी वही था प्रथम, जो मनाली से लाया था।

एक दो दिन बाद से ही माताजी मूर्च्छा-अर्द्ध-मूर्च्छा की अवस्था में रहने लगीं। फेमिली डाक्टर और मित्र डाक्टर आते, देखते। पर दवाइयों के देते रहने के सिवाय उनके पास अन्य कोई उत्तर न था।

और तभी एक दिन बच्चों को साधना कराते हुये मेरा ध्यान उन पर गया। बड़ी अजीब स्थिति हो रही थी उनकी। जोरों से श्वांस चल रही थी। आँखें बन्द। पेट भयंकर गति से ऊपर नीचे। मैंने आचार्य रजनीश से एक मुलाकात में बताया कि मुझे लगता है कि हम लोग जब साधना करते हैं तो उनकी कुंडलिनी

पर आघात होता है। वे मुस्करा कर बोले—हाँ, होगा ही। सामूहिक साधना का तात्पर्य ही यही है कि जहाँ अकेले घटित नहीं होता वहाँ शायद सबों के मध्य घटित हो जाये।

फिर शुक्रवार २३ अक्टूबर १९७० को जब मैं अपने डाक्टर मित्र को लेकर आचार्य श्री के पास पहुंचा तो उनसे कहा—माताजी के लिए कुछ बताइये। उनकी हालत बहुत खराब है।

तब उन्होंने बोलना भी छोड़ दिया था। खाने पीने की भी कोई मांग नहीं कर रही थीं। प्रायः आंखें मूंदे पड़ी रहतीं।

आचार्य श्री बोले—होश में हैं?

मैंने कहा—कह नहीं सकता पर लगता है कि गहरे में वे सुनती हैं। जबरदस्ती आंखें खोलते हैं तो पहचानती भी हैं किन्तु अब कभी कभी चिल्लाने के सिवाय बोलना बंद कर रक्खा है।

वे एक क्षण चुप रहे फिर बोले—ब्रम्हदत्त, तुम एक प्रयोग करो। तीन चार साधकों को लेकर उनके चारों ओर खड़े हो जाओ। तुम सिर की ओर रहो। सब लोग एक हाथ उनके शरीर पर रखकर आंखें बंद कर पांच मिनट तक तीव्र गति से श्वांस लो। फिर तुम उनसे कहो कि परमात्मा में लीन हो जाओ। ऐसा दस पन्द्रह मिनट तक तीन दिन तक करो। अगर उन्हें शरीर छोड़ना होगा तो छोड़ देंगी और नहीं तो वे स्वस्थ होने लगेगीं।

मेरे मित्र डाक्टर फौरन बीच में बोल पड़े—आचार्य जी, हमारा इथिक्स बचाने को कहता है और आप.....

अत्यन्त मनोहारी मुस्कराहट से आचार्य श्री बोले—बहुत शीघ्र इस सदी के अन्त तक जीवन एक दंड हो जायेगा। तब आप यह सब कहना भूल जायेंगे...

एक लम्बी चर्चा वहां हुई पर मैं वह सब यहां नहीं लिखना चाहता। मैं सिर्फ इतना कहूंगा यहां कि उन्होंने कहा था कि राजी खुशी विदा होने पर अगले जन्म पर बड़े अच्छे परिणाम होते हैं। तिब्बत और उसके मृत्यु-विज्ञान पर काफी चर्चा की थी उन्होंने।...

\+ \+ \+

२३ तारीख की शाम को ही मैंने प्रयोग किया। अब तो साधक घर में ही काफी हो गये थे। सभी बच्चे मां के पलंग को घेरकर एक-एक हाथ उनके शरीर पर रखकर खड़े हुए। मैं उनके सिरहाने उनकी दोनों आँखों के बीच अंगूठा रखकर खड़ा हुआ। आंखें बन्द कर हम लोग साधना में उतरे। दस-बारह मिनट के बाद हट गये सब। कोई परिणाम लक्षित नहीं हुआ। वे आंखें बंद किये चुपचाप पड़ी रहीं। बेहोश या होश में हैं, कुछ पता नहीं लगा। उसी दिन या दूसरे दिन संभवतः हमारे फेमिली डाक्टर ने आकर उन्हें देखा था। आंखों को चुटकी से खोलकर उसने टार्च की रोशनी डाली थी। पुतलियां हिली थीं।

शी इज आलराइट।—उसने कहा था और फिर मुझे अलग ले जाकर बोला, थोड़े ही दिन की मेहमान है, भगवान पर छोड़ दो सब।

पर दूसरे दिन सुबह अद्भुत घटना हुई। माताजी ने आंखें तो नहीं खोलीं किन्तु पहले की तरह ही चिल्लाकर बोलीं—अरे थोड़ी भाजी लाओ!——पूरे परिवार में खुशी की लहर दौड़ गयी। सब बच्चे उनके पलंग के पास इकट्ठे होकर उन्हें चिढ़ाने लगे—अम्मा, अम्मा भाजी चाहिए?——अम्मा बोलीं तो खाने को ही मांगा न? अम्मा, बटाटा बड़ा लाऊं?...अम्मा, चाय दो, पानी दो, गोली दो!...आदि आदि। वे मगर चुप

रहीं। फिर मेरी पत्नी ने आकर उनके कंधे को हिला-कर पूछा—अम्मा, भाजी खाओगी ? अबकी परिवार के सभी लोग खुशी से चित्कार उठे क्योंकि वे हमेशा के समान चीखकर बोलीं—नहीं, आग खाऊंगी ! सभी हंसते-हंसते लोटपोट हो गये। पत्नी दौड़कर भीतर गयी और एक प्लेट में भाजी लेकर आ गयी। उन्होंने आँखें तो नहीं खोलीं किन्तु मुंह खोल दिया। एक दो कौर उनके मुंह में डाला गया फिर उन्होंने मुंह बंद कर लिया। बच्चे आचार्य रजनीश की जय ! आचार्य रजनीश की जय ! चिल्लाने लगे।

२४ की शाम को फिर प्रयोग किया और २५ की सुबह को वे फिर बोलीं। २५ को इतवार था। वे इतवार को बाल धुलवातीं थीं। उस दिन उन्हें पेशाब खूब हुआ था। सुबह बिस्तर पूरा भीगा हुआ था। भाई रात भर जागते थे पर उन दिनों वे जरा भी हिलती डुलती न थीं और मुंह से बोलती भी न थीं। पेशाब बिस्तर पर हो जाता तो भाई दूसरी चादर डाल दिया करते थे उस पर। उठाने का काम सुबह ही हो पाता, जब मैं उठता। रविवार को चिल्ला-चिल्लाकर उनसे पूछा गया तो उन्होंने बाल धुलवाने के लिए सिर हिलाकर हां कहा। शरीर बास मार रहा था और होश आने पर वे नाराज न हो सोचकर गर्म पानी से उन्हें खूब नहलाया गया, बाल धोये गये।

सुबह साढ़े नौ बजे मैं सी० सी० आई० चैम्बर्स गया और आचार्य श्री से भेंट की। उन्हें बताया कि वे दो दिन से सुबह बोलती हैं। वे मुस्कराये—हाँ बोलेंगी ही। उन्हें शरीर छोड़ना होगा तो छोड़ देंगीं वरना स्वस्थ हो जायेंगीं।—— उन्होंने फिर कहा। कुछ बातें कर मैं चला आया।

उस दिन लास्ट-शो की टिकटें मेरा एक मित्र ले आया था। मेरे डाक्टर मित्र की भी एक टिकट थी; उस दिन दोपहर तीन-चार बजे माताजी की श्वास में कुछ फर्क नजर आया तो मैं डाक्टर मित्र के घर चला गया। वहां एक अन्य डाक्टर मित्र भी मिल गये। दोनों को लेकर घर आया। परीक्षण के बाद दोनों ने कबूल किया कि सांस कुछ 'शैलो' हो गयी है किन्तु भय की कोई बात नहीं है। डाक्टर (त्रिवेदी नाम है उनका) ने बड़े विश्वास से कहा—दो चार हप्ते तक तो कोई बात ही नहीं है। और मित्र ने कहा—आचार्य जी से फिर मिलना पड़ेगा। इस तरह वे लोगों को अच्छा करते रहेंगे तो हम लोगों का धंधा ही चौपट हो जायेगा।

रात को 'रेक्स' में मिलने को कह वे लोग चले गये। कुछ पीने वाली दवाइयां माताजी को देने को कहा था। चम्मच से मुंह खोलकर दवा उनके मुख में डाली गयी थी।——डाक्टरों के जाने के बाद शाम को सात-साढ़े सात बजे मैं अकेले ही ध्यान-प्रयोग के लिए बैठा। ध्यान से उठने के बाद बच्चों को ले माताजी पर प्रयोग किया। आज तीसरा दिन था। तीन दिन का ही प्रयोग बताया था आचार्य जी ने। न जाने क्यों मैं बहुत गंभीर हो गया था उस दिन। सबको हिम्मत साहस बंधाने वाला मैं, उस दिन बार-बार एक अज्ञात उदासी से भर-भर जा रहा था। नौ बजे रमेश आया। उसे नीचे चलकर पान लगवाने को कहा किन्तु वह मकान से नीचे उतरा और मेरे दिल में पता नहीं क्या हुआ कि मैंने उसे ऊपर से पुकारकर फिर बुलाया और कहा कि मैं पिक्चर नहीं जाऊँगा।

—अम्मा तो ठीक हैं न। उसने कहा।

—पर कुछ भी हो। मेरा दिल कहता है आज न जाओ। मैंने कहा और उसे समझा बुझाकर भेज दिया।

उसके जाने के बाद मैं भोजन के लिये बैठा था कि माताजी का श्वास एकदम बदल गई। बड़े जोरों की आवाज निकलने लगी। बड़ा पेट था उनका। एकदम फूलने और गिरने लगा।

पिताजी, भाई, बड़ी बहन, भाभी और सभी बच्चे तथा पड़ोसी इकट्ठे हो गये। एक गहरी काली छाया अचानक ही सब पर छा गयी।

मैं अकेले ही फिर साधना करने लगा ।..... एकदम अंधेरा । जैसे किसी गहरी खाई में मैं उतर गया ।.....ध्यान से वापिस आने पर मैं एक कुर्सी डाल कर माताजी के सिरहाने बैठ गया । दाहिने हाथ का अंगूठा उनके भ्रू-मध्य पर रखा और वह अंगूठा फिर जैसे चिपक गया ।

श्वास लो, श्वास लो । जैसे मुझे कोई कहता ।

मैं तीव्र गति से श्वास लेता और दो तीन मिनट बाद मेरे मुँह से निकलता—प्रकाश ही प्रकाश, आनन्द ही आनन्द, परमात्मा ही परमात्मा ।

अम्मा परमात्मा में लीन हो जाओ ।
अम्मा परमात्मा में लीन हो जाओ ।

अम्मा परमात्मा मे लीन हो जाओ । फिर तीव्र गति से श्वास में उतर आता ।

धीरे-धीरे रात गहरी हो चली । बारह बज गये । भाई का सिर दुःख रहा था । आँखें बंद किये पड़े थे । बोले, जाओ, तुम सो जाओ, मैं उठता हूं अब ।

मैं नहीं उठा ।

बहन बोली—जाओ सो जाओ । अभी हम लोग जाग ही रहे हैं । तुम उस तरफ सुबह उठना ।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया ।

भाई की बड़ी लड़की ने कहा—तुम सो जाओ न चाचा । आज मैं पापा के साथ जागूंगी सारी रात ।

मैंने उसकी ओर नहीं देखा ।

आज मां को छोड़ूंगा तो सब नष्ट हो जायेगा । ब्रह्मदत्त, ब्रह्मदत्त, सोना नहीं । ये सब तुम्हें फंसा रहे हैं, बना रहे हैं ।—कोई मुझे बार-बार कह रहा था । साधना करो, साधना करो ।

श्वास लो, श्वास लो ।

श्वास ही श्वास

.....डेढ़ बज गया । अम्मा की श्वास में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । बहन बाहर जाकर आराम करने लगीं ।

भतीजी, भाभी के पलंग पर उठ कर बैठ गयी ।

सब बच्चे सो गये थे ।

भाई एस्प्रो की एक टिकिया लेकर, आँखें बन्द किये फर्श पर लेटे थे ।

—प्रकाश ही प्रकाश । मेरे मुंह से निकला ।—अमृत ही अमृत । परमात्मा ही परमात्मा ।.....मैं आँखें बंद कर ध्यान में जा ही रहा था कि देखा उनका मुंह बार-बार खुल रहा है । पास ही गंगा जल रक्खा था । उनके मुंह में थोसा सा डाला । और तीव्रता से श्वास-क्रिया में उतर गया ।

पौने दो बजे मैं अपने आप ही बड़बड़ाने लगा ।

अम्मा, परमात्मा पुकार रहा है ।·····लीन हो जाओ, लीन हो जाओ उसमें ।····· देखो, बाहर देखो ।··· प्रकाश ही प्रकाश·····आनंद ही आनंद·····परमात्मा ही परमात्मा ।·····चारों ओर परमात्मा है·····परमात्मा के सिवाय कुछ भी नहीं है·····कुछ भी नहीं है ···· कुछ भी नहीं है ।.....

मैंने आँखें बन्द कर जोरों से श्वास ली ।

—देखो, देखो, बाहर देखो····· शरीर का जाल तोड़ दो·····बाहर निकलकर देखो····· । देखो, देखो,

जाल से झांक के देखो·····प्रकाश ही प्रकाश·····
परमात्मा ही परमात्मा।.....

मैंने माताजी का चेहरा देखा। उनकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। मैं तड़प उठा।

—मोह में मत फंसो·····बाहर आओ·····
देखो, तुम्हें परमात्मा बुला रहा है·····यहां तुम्हारा कुछ नहीं है·····कोई बेटा नहीं, कोई पति नहीं, कोई बहू नहीं, कोई नाती-पोते नहीं·····जाओ, जाओ, निकल जाओ बाहर·····आनन्द ही आनन्द बरस रहा है·····
बाहर प्रकाश ही प्रकाश है·····तोड़ दो जाल निकल जाओ मुक्त हो जाओ।····परमात्मा ही परमात्मा।····

एकाएक उन्होंने दाहिना हाथ उठाया। बड़े जोर से शरीर को हुबका मारकर जैसे उठाने का प्रयत्न किया किन्तु फिर जैसे अशक्त, विवश हो पड़ गयीं। मैं फिर श्वास क्रिया में उतरा किन्तु एकाएक लगा कि मेरी शक्ति चुक गई है। मैं खाली-खाली हो गया हूं। मैंने अकुलाकर सिर उठाया। दीवार पर आचार्य जी की समाधिस्थ मुद्रा वाली तस्वीर लगी थी। मेरे प्राण-प्राण पुकारे उठे।

मालिक! बस अब मुझसे नहीं होता!

और पलक झपकते सब परिवर्तन हो गया। घर के सब लोग गहन निद्रा में चले गये। चित्र से कुछ झरता हुआ प्रतीत हुआ और पूरा कमरा किसी अद्भुत वस्तु से भर गया। मेरे शरीर में विद्युत सी दौड़ गयी और मैं एक अपूर्व शक्ति से भर उठा।

.....प्रकाश ही प्रकाश .....परमात्मा ही परमामा.....सिर्फ परमात्मा है... ..परमात्मा के सिवाय कुछ भी शेष नहीं है.....देखो, देखो, कहीं कोई पति नहीं है, कोई बेटा नहीं, कोई बहू नहीं, कोई घर नहीं, कोई कुटुम्ब नहीं.....केवल परमात्मा बचा है.....प्रकाश ही प्रकाश.....लीन हो जाओ, लीन हो जाओ उन....

माताजी ने अबकी दोनों हाथ हिलाये। मैं जोरों से चिल्लाया।

.....निकल जाओ.....निकल जाओ अम्मा .. मौका न चूको..... फिर मौका शायद न मिले.....गुरु की आज्ञा मानो.....अचार्य जी का आदेश है.....तोड़ दो, तोड़ दो शरीर का जाल.....मुक्त हो जाओ..... प्रकाश ही प्रकाश.....

भक् करके पेट्रोमैक्स जैसे बुझ गया। दोनों हाथ उठ गये। मुट्ठियां बंध गयीं। सिर धीरे से लुढ़क गया। दोपहर से चल रही धौंकनी जैसी सांसें थम गयीं। उनके भीतर से कुछ सुरसुराकर निकला और मेरे चेहरे से, पूरे शरीर से लिपट गया। मेरा पूरा शरीर थरथरा उठा और मैं बुमकार मारकर रोया। मेरा सिर अपने आप आचार्य श्री की तस्वीर की ओर

.....प्रभु तेरी अनुकंपा अपार है। प्रभु तेरी अनुकंपा अपार है। प्रभु तेरी अनुकंपा अपार है।..... मैं पूरी शक्ति से चिल्लाने लगा।

पूरा कमरा झिलमिला उठा। अचानक भाई उठकर खड़े हो गये। दोनों हाथ उठाकर वे पूरा कमरा गोलगोल घूमकर देखने लगे। उनके मुंह से बार-बार निकल रहा था—ओह, ओह, ओह। और फिर उन्होंने दोनों हाथ कान पर रख लिये।

उन्हें घण्टे-घड़ियाल, शंख की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

मैंने उन्हें झकझोरा। वे जैसे पृथ्वी पर लौट आये।

अम्मा, अम्मा। वे दौड़कर अम्मा के शरीर से लिपट गये।

मकान के सभी लोग जाग गये। कमरा लोगों से भर गया। मैं अभी भी विक्षिप्त सा बड़बड़ा रहा था। .....प्रकाश ही प्रकाश.....लीन हो जाओ.....लीन

हो जाओ.....रुको मत.....रुको मत.....निकल जाओ.....मौका न चूको।.....

ठीक सवा दो बजे माताजी ने प्राण त्यागे थे।

— — —

सुबह दाह क्रिया तक मैं बार-बार साधना में उतरता रहा। मेरे वश के बाहर हो गया था रोकना। माताजी की देह सुबह छः बजे तक गर्म रही। माथा सबसे अधिक गर्म था। डाक्टर भी पहले थोड़ी देर तक चकरा कर रह गये थे। सबसे अद्‌भुत बात थी कि उनकी दोनों मुट्ठियाँ बंधी थी जबकि मैं पूरी जिन्दगी सुनता आया हूं कि 'हाथ पसारे जाएँगे। दोनों आँखों की पुतलियां भृकुटियों के मध्य स्थित थीं और चेहरा एकदम साफ और चमकीला हो गया था।

मेरा पूरा परिवार उस दिन से साधना में उतर गया। किन्तु बात धीरे-धीरे फैली और फिर चारों ओर से उंगलियां उठने लगीं। सगे संबंधियों ने सीधा आरोप लगाया कि वे अभी और जिन्दा रहतीं किन्तु इन लोगों ने साधना करकर के मार डाला।

मैंने किसी को कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। मैं स्वयं मां की चिता के सामने खड़े हो यह विचार कर चुका था। एक बारगी मुझे लगा था कि मैंने उन्हें हटा दिया। किन्तु क्या मैं सिद्ध हूं? क्या मैं ईश्वर हूं?··· और क्या वे शरीर के जाल से, पीड़ा और कष्ट से स्वयं मुक्त होना नहीं चाहती रहीं होंगी·····कई दिनों तक मैं अपराध भावना से पीड़ित रहा किन्तु फिर ऐसे साहसी और प्रेमियों के वक्तव्य सुनाई पड़े जिनमें मेरे डाक्टर मित्र की माता जी का कथन सबसे अद्‌भुत था—तुमसे तो कुछ भी आशा नहीं है। उन्होंने डाक्टर से कहा था—तुम साधना तक नहीं करते फिर क्या तारोगे मुझे!

कई मित्रों ने कहा कि ऐसी मौत तुम हमें दे सको तो हम अभी, इसी क्षण मरने को तैयार हैं···।

पर अब तो मैं इन सब वक्तव्यों से बहुत दूर, बहुत परे हो चुका हूं। मेरी याद में तो सिर्फ आचार्यजी का वह संदेश निरंतर गूंजता रहता है जो उन्होंने मेरा परिचय जानने के बाद मनाली में लिख दिया था।

कथा ही नहीं,
जीवन भी कथा है।
कथा ही मत लिखो,
जीवन भी लिखो।
कथा जीवन बने
और जीवन कथा बने।

तो वह कला उपलब्ध हो जाती है जिसका नाम कि योग है। ●●●

उसने कहा : प्रेम।
प्रेम ही परमात्मा है।
उसने कहा—जीवन—और तब जीवन ही परमात्मा है।
और
उसने पुकार-पुकार कर कहा—'शून्य'।
शून्य ही निर्वाण है; शून्य ही ब्रह्म है।
वह न एक है न अनेक। वह तो अद्वैत है।
और प्रत्येक अनूठा है।
उसने उसे 'जो कि है'—
कुछ भी नाम देने से इन्कार ही कर दिया है।
क्योंकि उसे उसने
अज्ञेय कहा है फिर भी
जानने को कहा है—स्वयं जाना है
जी रहा है वह—अपने को।

'तथाता' के चरणों में

तुम ठीक ऐसे वक्त आये

जबकि हमारे प्राण घबड़ा ही गए थे ।

•

कभी तुम कृष्ण लगे, कभी बुद्ध, कभी जीसस, कभी महावीर, कभी नानक.....

ओ विश्व-रंगमंच के अनोखे नट ! अलौकिक कलाकार !!

क्या नाम दें तुझे !

तूने जीवन का रहस्य दिया,

सन्यास का फूल खिलाया, ऊपर से 'ध्यान' की सीढ़ी फेंका और ललकारा कि डरो मत, चढ़ आओ—और हमारे सदभाग्य खुले ।

••

तेरी वाणी में कैसा जादू है जो कहते भी नहीं बनता और चुप तो रहा ही नहीं जाता—बिना तेरे गीत गाए...

प्रभो ! जीवन बहा जा रहा है,

मंजिल अति दूर है, प्यास कब बुझेगी, पता नहीं, लेकिन इस प्यास में भी कितना आनन्द है, कितनी धन्यता है !

हे प्रभो ! हमारी यह प्यास सदा बनी रहे, और तुझ अशरीरी का यह भौतिक शरीर भी अमर रहे, सदा अमर रहे !

—मा धर्मरक्षिता,
मालाड, बम्बई ।

With Best Compliments From

ALPHA (IMPEX) CORPORATION

SOLE SELLING AGENTS FOR

R. Guilleminot Boespflug &
CIE (France)
For Photo Products

Frithjof Tutzschke (Germany)
For Damping Roller Cover (Hoses)

Vieille—Montagne (Belgium)
For Lithographic Zinc Plates

Herbst & Illig (Germany)
For Kohinoor Glass Halftone And all Sorts
of Contact Screens

Norprint Limited (Autotype)
For Silk Screen Films

Alpha House (Behind Handloom House)

19, Police Court Lane, Fort, Bombay-1

Grams-Lithogull *Phone-266546-269226*

तुलसी मानस प्रकाशन की उपलब्धियां

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित संक्षिप्त रूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३.००
आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव-जंतुओं, वनस्पतियों के द्वारा आध्यात्म शिक्षा।

२. ज्ञान-साधना २.००
लोनावला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञान साधना के प्रति संकेत।

३. विज्ञान से ज्ञान १.००
एक्स-रे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर आध्यात्मिक विद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास।

४. वेदान्त-नवनीत १.५०
सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे महात्माओं के प्रवचनों का सार।

५. वेदान्त का सरल बोध २.००
वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धांत बड़े ही सरल उदाहरणों में।

६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल, हिंदी व अंग्रेजी ४.००
ज्ञान की गंभीर बातों को सूत्र तथा चित्र द्वारा प्रस्तुत।

७. आध्यात्मिक डायरी–१९७१ ६.००
सचित्र और दार्शनिक सूत्रों से परिपूर्ण दैनंदिनी।

८. आध्यात्मिक चित्रावली
हिन्दी- इंगलिश पाकेट बुक ६.००
२५० पृष्ठों में रंगीन ब्लैक एंड ह्वाइट चित्र इंग्लिश तथा हिन्दी में सूत्रों सहित सर्वसाधारण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान।

९. मुमुक्षु ५.००
आधुनिक मनोरंजक आध्यात्मिक उपन्यास।

१०. मन की शांति (पद्य) ४.००
अंग्रेजी मूल रचना 'पीस ऑफ माइण्ड' का हिन्दी अनुवाद।

११. हमारी परम्परा २.००
क्रिकेट और ताश के पत्ते आदि दृष्टांतों द्वारा अध्यात्म की नवयुवकों तक पहुंच।

१२. आराम सुख शांति और आनंद ०.५०
जैसा नाम तैसा गुण।

१३. अपनी ओर इशारा १.००
अपनी ओर आने के सूत्र रूप इशारे।

१४. व्यावहारिक जीवन और परमात्मा १.००
व्यवहार परमात्ममिलन में बाधक नहीं, इसकी स्पष्टता।

१५. श्मशान यात्रा ०.५०
जीवन यात्रा का अंतिम चरण।

१६. मेरे १०८ गुरु ३.००
क्षण-क्षण व कण-कण से नूतन ज्ञान।

१७. सजगता १.००
पल-पल अविरल वर्तमान में सजग जीवन।

१८. अविरोध–निरोध और स्वबोध २.००
अविरोध से मन का निरोध और निरुद्ध मन में स्वबोध।

१९. **वेदान्त का वैज्ञानिक मनन** २.००
वैज्ञानिक दृष्टांतों द्वारा वेदान्त का मनन।

२०. **चिन्ता और निश्चिंतता (प्रेस में)** २.००
चिन्ता से पार उतरने के सरल सूत्र।

२१. **मन के पार** १.००
विकट सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर।

२२. **घर-घर की समस्या (प्रेस में)** २.००
घरेलू दैनिक विकट समस्याओं का समाधान।

२३. **(पीस ऑफ माइण्ड)** ३.००
अंग्रेजी में सूत्र रूप आध्यात्मिक सरल ज्ञान।

२४. **(क्वायटर मोमेण्ट्स)** २.००
मौन के क्षणों में लिखे सूत्र रूप अंग्रेजी-सूक्त।

ग्राहक एवं—

(एजेन्टस्, पत्र–व्यवहार करें)

तुलसी–मानस–प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कंपनी

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड,
बंबई–१०

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल **मूल्य ५) वार्षिक**

[आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें]

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,
डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१
Phone : 264530

With Best Copliments

From

●

KANI & Co.

Paper & Boards Merchant

Stockists : Bellarpur & J. K. Paper

●

9, New Marine ines,

Opp. : Liberty Cinema, Bombay-20

Tele.-291570

With Best Compliments

From

PLAST-CON PACKAGING PVT. LTD.

MANUFACTURERS OF

Industrial Plastic Packaging of all type
Plastic Novelty Items.
Textile Components.
Plastic Caps.

WORKS :
312, A To Z Industrial Estate
Fergusson Road, Lower Parel,
Bombay-13
Telephone : C/o 370692

OFFICE :
3–4, Sambava Chambers
20, Sir P. M. Road,
Fort, Bombay–1
TELE.
Office : 261794
252160
Res. 365512

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे । व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्रा
स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७६० राइटटाउन, जबलपुर ।
सौजन्य संपादक : कनु शेठ, B. Sc. (Ag.)
मुद्रण : श्रीपाल प्रिन्टर्स, १६१, कोतवाली वार्ड, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित ।

वर्ष : २॥ १ एवं १६ जून ७१ ॥ अंक : २३-२४ ॥ मूल्य : १.००
॥ वार्षिक मूल्य : १२.०० ॥

"तैरो मत, बहो।"

—भगवान श्री रजनीश

— अराध्य प्रेमी —

स्वामी गोविन्द सिद्धार्थ (श्री जे. डी. लश्करी),

ए टू जेड इन्डस्ट्रियल स्टेट, लोवर परेल,

बंबई : १३ (फ़ोन : 370692)

पिछले मई अंक तथा जून अंक के मुखपृष्ठ के छायाकार : श्री कामता सागर, जबलपुर